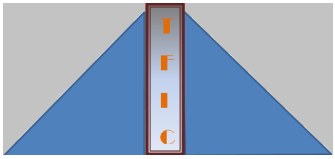

THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

वीर सेवा मन्दिर

दिल्ली

★

क्रम संख्या ६६५

काल नं० २८०.४ वर्मा

खण्ड

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका १८ वाँ ग्रन्थ ।

राजा और प्रजा ।

जगत्प्रसिद्ध लेखक और कवि

डा० रवीन्द्रनाथ टागोरकी

राजा और प्रजा' नामक निबन्धावलीका अनुवाद ।

अनुवादकर्त्ता—

श्रीयुत बाबू रामचन्द्र वर्मा ।

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय ।

आश्विन, १९७६ वि० ।

सितम्बर, सन् १९१९ ई० ।

प्रथमावृत्ति ।] [मूल्य एक रुपया ।

जिल्द-सहितका मूल्य १।=)

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई ।

प्रिण्टर—
मंगेश नारायण कुलकर्णी,
कर्नाटक छापखाना,
४३४ ठाकुरद्वार, बम्बई ।

निवेदन।

इसके पहले हमारे पाठक जगत्प्रसिद्ध लेखक सर रवीन्द्रनाथ टागोरकी दो निबन्धावलियाँ (स्वदेश और शिक्षा) पढ़ चुके हैं। आज यह तीसरी निबन्धावली उपस्थित की जाती है। हमारा विश्वास है कि हिन्दीके राजनीतिक साहित्यमें यह एक अपूर्व चीज होगी। इसमें पाठकोंको कवि-सम्राटकी सर्वतोमुखी प्रतिभाका दर्शन होगा। वे देखेंगे कि रवीन्द्र बाबूका राजनीतिक ज्ञान भी कितना गंभीर, कितना प्रौढ़ और कितना उन्नत है। हमारी समझमें राजनीतिके क्षेत्रमें काम करनेवालोंको और अपने प्यारे देशकी उन्नति चाहनेवालोंको ये निबन्ध पथ-प्रदर्शकका काम देंगे। राजा और प्रजाके पारस्परिक सम्बन्धको स्पष्टताके साथ समझनेके लिए ऐसे अच्छे विचार शायद ही कहीं मिलेंगे।

निबन्ध पुराने हैं, कोई कोई तो २५-२६ वर्ष पहलेके लिखे हुए हैं; फिर भी वे नये से मालूम होते हैं। उनमें जिन सत्यों पर विचार किया गया है, वे सार्वकालिक और सार्वदेशीय हैं, और इस लिए वे कभी पुराने नहीं हो सकते—उनकी जीवनी शक्ति सदा स्थिर रहेगी।

पाठकोंसे यह निवेदन कर देना आवश्यक है कि ये निबन्ध अध्ययन और मनन करने योग्य हैं—केवल पढ़ डालनेके नहीं। साधारण पुस्तकोंके समान पढ़ जानेसे ये समझमें भी नहीं आ सकते। इन्हें बारम्बार पढ़ना चाहिए और हृदयंगम करना चाहिए।

हिन्दी-संसारमें गंभीर और प्रौढ़ ग्रन्थोंके पढ़नेवालोंकी संख्या धीरे धीरे बढ़ रही है, यह जानकर ही हमने इस निबन्धावलीको प्रकाशित करनेका साहस किया है। आशा है कि इसके पढ़नेवाले हमें यथेष्ट संख्यामें मिल जावेंगे।

—प्रकाशक।

सूची ।

निबन्ध ।	लिखे जानेका समय ।	पृष्ठसंख्या ।
१ अँगरेज और भारतवासी	(विक्रम संवत् १९५०)	१
२ राजनीतिके दो रुख	(,, ,,)	४६
३ अपमानका प्रतिकार	(वि० स० १९५१)	५७
४ सुविचारका अधिकार	(,, ,,)	७१
५ कण्ठ-रोध	(वि० सं० १९५५)	८२
६ अत्युक्ति ...	... ...	९५
७ इम्पीरियलिज्म (साम्राज्यवाद)	(वि० सं० १९६२)	११३
८ राजभक्ति	(,, ,,)	१२०
९ बहुराजकता	(,, ,,)	१३२
१० पथ और पाथेय...	...	१३७
११ समस्या ...	...	१७४

रवीन्द्र बाबूके अन्य ग्रन्थ।

१ **स्वदेश**। इसमें रवीन्द्रबाबूके १ नया और पुराना, २ नया वर्ष, ३ भारतका इतिहास, ४ देशी राज्य, ५ पूर्वीय और पाश्चात्य सभ्यता, ६ ब्राह्मण, ७ समाजभेद, और ८ धर्मबोधका दृष्टान्त, इन आठ निबन्धोंका हिन्दी अनुवाद है। अपने देशका असली स्वरूप समझनेवालोंको, उसके अन्तःकरण तक प्रवेश करनेकी इच्छा रखनेवालोंको, तथा पूर्व और पश्चिमका अन्तर हृदयंगम करनेवालोंको ये अपूर्व निबन्ध अवश्य पढ़ने चाहिए। बड़ी ही गंभीरता और विद्वत्तासे ये निबन्ध लिखे गये हैं। तृतीयावृत्ति हो चुकी है। मू० ॥=)

२ **शिक्षा**। इसमें १ शिक्षा-समस्या, २ आवरण, ३ शिक्षाका हेरफेर, ४ शिक्षा-संस्कार और ५ छात्रोंसे संभाषण, इन पाँच निबन्धोंके अनुवाद हैं। इनमें शिक्षा और शिक्षापद्धतिके सम्बन्धमें बड़े ही पाण्डित्यपूर्ण विचार प्रकट किये गये हैं। इनसे आपको मालूम होगा कि हमारी वर्तमान शिक्षापद्धति कैसी है, स्वाभाविक शिक्षापद्धति कैसी होती है और हमें अपने बच्चोंको कैसी शिक्षासे शिक्षित करना चाहिए। मूल्य नौ आने।

३ **आँखकी किरकिरी**। यह रवीन्द्रबाबूके बहुत ही प्रसिद्ध उपन्यास 'चोखेर वालि' का हिन्दी अनुवाद है। वास्तवमें इसे उपन्यास नहीं किन्तु मानस शास्त्रके गूढ़ तत्त्वोंको प्रत्यक्ष करानेवाला मनोमोहक चित्रपट कहना चाहिए। मनुष्योंके विचारोंमें बाहरी घटनाओं और परिस्थितियोंके कारण जो अगणित परिवर्तन होते हैं उनका आभास आपको इसकी प्रत्येक पंक्ति और प्रत्येक वाक्यमें मिलेगा। सहृदय पाठक इसे पढ़कर मुग्ध हो जायँगे। बड़ा ही सरस उपन्यास है। जो लोग केवल प्रेम-कथायें पढ़ना पसन्द करते हैं, उनका भी इससे खूब मनोरंजन होगा। क्योंकि इसमें भी एक प्रेम-कथा ग्रथित की गई है। अनुवाद बहुतही उत्तम हुआ है। तृतीयावृत्ति। मू० १॥=)

मैनेजर, **हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय**,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, **बम्बई**।

जो इतनी प्रबल हो गई है वह क्यों? शासनकर्त्ता हमारे यहाँके समाचारपत्रोंके किसी एकाध प्रबंध-विशेषको मिथ्या बतलाकर उसके सम्पादकको और यहाँ तक कि हतभाग्य मुद्रकको भी जेल भेज सकते हैं, किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यके पथमें प्रतिदिन जो ये छोटे छोटे कँटीले पेड़ बढ़ते जा रहे हैं उनका कौनसा विशेष प्रतिकार किया गया है?

ऐसी दशामें जब कि इन कँटीले वृक्षोंका मूल मनमें है तब उन वृक्षोंको उखाड़ फेंकनेके लिये उसी मनमें प्रवेश करना आवश्यक होगा। किन्तु पक्की और कच्ची सड़कोंके द्वारा अँगरेज लोग और तो सब जगह जाआ सकते हैं परन्तु दुर्भाग्यवश वे उस मनके अन्दर नहीं जा सकते। उस जगह प्रवेश करनेके लिये तो कदाचित् सिरको थोड़ा झुकाना पड़ता है। लेकिन अँगरेजोंका मेरुदण्ड कहीं झुकना चाहता ही नहीं।

विवश होकर अँगरेज लोग अपने आपको यही समझानेकी चेष्टा करते हैं कि समाचारपत्रोंमें जो ये कड़वी बातें कही जाती हैं, ये जो सभाएँ होती हैं और राज्यतंत्रकी यह जो अप्रिय समालोचना हुआ करती है उसके साथ सर्वसाधारणका कोई सम्बन्ध नहीं है। ये सब उपद्रव केवल थोड़ेसे शिक्षित पुतली नचानेवालोंके ही उठाए हुए हैं। वे लोग कहते हैं कि अन्दर तो सभी बातें बहुत ठीक हैं और बाहर जो विकृतिका थोड़ा बहुत चिह्न दिखलाई देता है वह सब इन्हीं चतुर लोगोंका बनाया हुआ है। ऐसी अवस्थामें फिर अन्दर प्रवेश करके कुछ देखनेकी आवश्यकता रह नहीं जाती; केवल जिन चतुर लोगों-पर सन्देह किया जाता है उन्हींको दण्ड देनेसे सब झगड़ा खतम हो जाता है।

इसीमें अँगरेजोंका दोष है। वे किसी प्रकार घरमें (ठिकानेपर) आना ही नहीं चाहते। किन्तु दूर ही दूरसे, बाहर ही बाहरसे, सब प्रकारका स्पर्श आदि तक भी बचाकर मनुष्यके साथ किसी प्रकारका व्यवहार नहीं किया जा सकता। आदमी जितना ही अधिक दूर रहता है उसको विफलता भी उतनी ही अधिक होती है। मनुष्य कोई जड़ यंत्र तो है ही नहीं, जो वह बाहरसे ही पहचान लिया जा सके। यहाँ तक कि इस पतित भारतवर्षके भी एक हृदय है और उस हृदयको उसने अपने अँगरखेकी आस्तीनमें नहीं लटका रक्खा है।

जड़ पदार्थको भी विज्ञानकी सहायतासे बहुत अच्छी तरह पहचानना पड़ता है और तभी जाकर जड़ प्रकृतिपर पूर्ण रूपसे अधिकार किया जा सकता है। इस संसारमें जो लोग अपने स्थायी प्रभावकी रक्षा करना चाहते हैं उनके लिये अन्यान्य अनेक गुणोंके साथ साथ एक इस गुणका होना भी आवश्यक है कि वे मनुष्योंको बहुत अच्छी तरहसे पहचान सकें, उनके हृदयके भाव समझ सकें। मनुष्यके बहुत ही पास पहुँचनेके लिये जिस क्षमताकी आवश्यकता होती है वह क्षमता बहुत ही दुर्लभ है।

अँगरेजोंमें बहुत सी क्षमताएँ हैं किन्तु यही क्षमता नहीं है। वे बल्कि उपकार करनेसे पीछे न हटेंगे किन्तु किसी प्रकार मनुष्यके पास जाना न चाहेंगे। वे किसी न किसी प्रकार उपकार करके चटपट अपना पीछा छुड़ा लेंगे और तब क्लबमें जाकर शराब पीएँगे, बिलियर्ड खेलेंगे और जिसके साथ उपकार करेंगे उसके सम्बन्धमें अवज्ञाविषयक विशेषणोंका प्रयोग करते हुए उसके विजातीय शरीरको यथासाध्य अपने मनसे दूर कर देंगे।

यह लोग दया नहीं करते केवल उपकार करते हैं, स्नेह नहीं करते केवल रक्षा करते हैं, श्रद्धा नहीं करते बल्कि न्यायानुसार आचरण करनेकी चेष्टा करते हैं; जमीनको पानीसे नहीं सींचते पर हाँ, ढेरके ढेर बीज बोनेमें कंजूसी नहीं करते।

लेकिन ऐसा करने पर यदि यथेष्ट कृतज्ञताके पौधे न उगें तो क्या उस दशामें केवल जमीनको ही दोष दिया जायगा? क्या यह नियम विश्वव्यापी नहीं है कि यदि हृदयके साथ काम न किया जाय तो हृदयमें उसका फल नहीं फलता?

हमारे देशके शिक्षित-सम्प्रदायके बहुतसे लोग प्राणपणसे इस बातको प्रमाणित करनेकी चेष्टा करते हैं कि अँगरेजोंने हम लोगोंके साथ जो उपकार किये हैं वे उपकार नहीं हैं। हृदयशून्य उपकारको ग्रहण करके वे लोग अपने मनमें किसी प्रकारके आनन्दका अनुभव नहीं कर सकते। वे लोग किसी न किसी प्रकार उस कृतज्ञताके भारसे मानों अपने आपको मुक्त करना चाहते हैं। इसी लिये आजकल हमारे यहाँके समाचारपत्रोंमें और बातचीतमें अँगरेजोंके सम्बन्धमें अनेक प्रकारके कुतर्क दिखाई देते हैं।

कहनेका तात्पर्य यह है कि अँगरेजोंने अपने आपको हम लोगोंके लिये आवश्यक तो कर डाला है लेकिन अपने आपको प्रिय बनानेकी आवश्यकता नहीं समझी। वे हम लोगोंको पथ्य तो देते हैं परन्तु उस पथ्यको स्वादिष्ट नहीं बना देते और अन्तमें जब उसके कारण कै हो जाती है तब व्यर्थ आँखें लाल करके गरज उठते हैं।

आजकलका अधिकांश आन्दोलन मनके गूढ क्षोभसे ही उत्पन्न है। इस समय प्रत्येक ही बात दोनों पक्षोंकी हार जीतकी बात हो जाती है। जिस अवसर पर केवल दो चार मुलायम बातें कहनेसे ही

बहुत अच्छा काम हो सकता हो वहाँ हम लोग तीव्र भाषामें आग उगलने लग जाते हैं और जिस अवसर पर किसी साधारण अनुरोधके पालन करनेमें कोई विशेष हानि नहीं होती उस अवसर पर भी दूसरा पक्ष विमुख हो जाता है।

किन्तु सभी बड़े अनुष्ठान ऐसे होते हैं कि उनमें विना पारस्परिक सद्भावके काम नहीं चलता। पचीस करोड़ प्रजाका अच्छी तरह शासन करना कोई सहज काम नहीं है। जब कि इतनी बड़ी राजशक्तिके साथ कारबार करना हो तब संयम, अभिज्ञता और विवेचनाका होना आवश्यक है। गवर्नमेण्ट केवल इच्छा करके ही सहसा कोई काम नहीं कर सकती। वह अपने बड़प्पनमें डूबी हुई है, अपनी जटिलतासे जकड़ी हुई है। यदि उसे जरा भी कोई काम इधरसे उधर करना हो तो उसे बहुत दूरसे बहुतसी कलें चलानी पड़ती हैं।

हमारे यहाँ एक और बड़ी बात यह है कि ऐंग्लोइंडियन और भारतवासी इन दो अत्यन्त असमान सम्प्रदायोंका ध्यान रखते हुए सब काम करना पड़ता है। बहुतसे अवसरोंपर दोनोंके स्वार्थ परस्पर विरोधी होते हैं। राज्यतंत्रका चालक इन दो विपरीत शक्तियोंमेंसे किसी एककी भी उपेक्षा नहीं कर सकता और यदि वह उपेक्षा करना चाहे तो उसे विफल होना पड़ता है। हम लोग जब अपने मनके अनुसार कोई प्रस्ताव करते हैं तब अपने मनमें यही समझते हैं कि गवर्नमेण्टके लिये मानों ऐंग्लोइंडियनोंकी बाधा कोई बाधा ही नहीं है। लेकिन सच पूछिए तो शक्ति उन्हींकी अधिक है। प्रबल शक्तिकी अवहेला करनेसे किस प्रकार संकटमें पड़ना पड़ता है इसका परिचय एल्बर्ट बिलके विप्लवसे मिल चुका है। यदि कोई सत्य और न्यायके पथमें भी रेलगाड़ी चलाना चाहे तौ भी उसे पहले यथोचित उपायसे मिट्टी

स्त्रियाँ समाजके लिये शक्तिस्वरूप होती हैं। यदि स्त्रियाँ चाहें तो वे दो विरोधी पक्षोंको परस्पर मिला सकती हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश वे स्त्रियाँ ही सबसे बढ़कर उन संस्कारोंके वशमें हैं। हम लोगोंको देखते ही उन ऐंग्लो-इंडियन स्त्रियोंके स्नायुओंमें विकार और सिरमें दर्द होने लगता है। इसके लिये हम उन लोगोंको क्या दोष दें, यह हम लोगोंके भाग्यका ही दोष है। विधाताने हम लोगोंको ऐसा बनाया ही नहीं कि हम लोग पूरी तरह उन्हें पसन्द आते।

इसके बाद हम लोगोंके बीचमें आकर अँगरेज लोग जिस प्रकार हम लोगोंके सम्बन्धमें बातचीत करते हैं, बिना कुछ भी परवाह किए हम लोगोंके सम्बन्धमें जिन सब विशेषणोंका प्रयोग करते हैं और हम लोगोंको बिना पूर्ण रूपसे जाने ही हम लोगोंकी जो शिकायतें और निन्दायें किया करते हैं, प्रत्येक साधारण बातमें भी हम लोगोंके प्रति उनका जो बद्धमूल अप्रेम प्रकट होता है, उस सबको कोई नया आया हुआ अँगरेज धीरे धीरे अपने अन्तःकरणमें स्थान दिए बिना रह ही नहीं सकता।

हम लोगोंको यह बात स्वीकृत करनी ही पड़ेगी कि कुछ ईश्वरीय बातोंके कारण ही हम लोग अँगरेजोंकी अपेक्षा बहुत दुर्बल हैं और अँगरेज लोग हम लोगोंका जो असम्मान करते हैं उसका हम लोग किसी प्रकार कोई प्रतिकार कर ही नहीं सकते। जो स्वयं अपने सम्मानका उद्धार नहीं कर सकता उसका इस संसारमें कहीं सम्मान नहीं होता। जब विलायतसे कोई नया आया हुआ अँगरेज यहाँ आकर देखता है कि हम लोग चुपचाप सारा अपमान सहते रहते हैं तब हम लोगोंके सम्बन्धमें उसे कुछ भी श्रद्धा नहीं रह सकती।

ऐसी दशामें उन्हें यह बात कौन समझाने जायगा कि हम लोग अपमानके सम्बन्धमें उदासीन नहीं हैं बल्कि हम लोग दरिद्र हैं और

हम लोगोंमें कोई भी स्वप्रधान नहीं है बल्कि प्रत्येक व्यक्ति एक एक बड़े परिवारका प्रतिनिधि है। उसके ऊपर केवल अपना ही भार नहीं है बल्कि उसके पिता, माता, भाई, बहन, पुत्र और परिवारका जीवन भी उसीपर निर्भर करता है। उसे बहुत कुछ आत्मसंयम और आत्म-त्याग करके सब काम करना पड़ता है। उसे सदासे इसीकी शिक्षा मिली है और इसीका अभ्यास हुआ है। यह बात नहीं है कि वह आत्मरक्षाकी तुच्छ इच्छाके सामने आत्मसम्मानकी बलि देता है बल्कि वह बड़े परिवारके सामने, अपने कर्त्तव्यज्ञानके सामने उसकी बलि देता है। कौन नहीं जानता कि दरिद्र भारतीय कर्मचारी नित्य कितनी फटकारें और धिक्कार सुनकर आफिससे घर चले आते हैं और उन्हें अपना अपमानित जीवन कितना असह्य और दुर्भर जान पड़ता है। उसे जो जो बातें सुननी पड़ती हैं वे इतनी कड़ी होती हैं कि उस दशामें पड़कर सबसे गया बीता आदमी भी अपने प्राण देनेके लिये तैयार हो सकता है; लेकिन फिर भी वह बेचारा भारतवासी दूसरे दिन ठीक समयपर पाजामेपर चपकन पहनकर फिर उसी आफिसमें जा पहुँचता है और उसी स्याहीसे भरे हुए टेबुलपर चमड़ेकी जिल्दवाला बड़ा रजिस्टर खोलकर उसी पिङ्गलवर्ण बड़े साहबकी नित्यकी फटकारें चुपचाप सहता रहता है। क्या वह आत्मविस्मृत होकर एक क्षणके लिये भी अपनी बड़ी गृहस्थीका ध्यान छोड़ सकता है? क्या हम लोग अँगरेजोंकी तरह स्वतंत्र और गृहस्थीके भारसे रहित हैं। यदि हम प्राण देनेके लिये तैयार हों तो बहुतसी निरुपाय स्त्रियाँ और बहुतसे असहाय बालक व्याकुल होकर हाथ उठाते हुए हमारी कल्पनादृष्टिके सामने आ खड़े होते हैं। हम लोगोंको बहुत दिनोंसे इसी प्रकार अपमान सहनेका अभ्यास हो गया है।

लेकिन यह बात अँगरेजोंके समझनेकी नहीं है। इसके लिये उनके पास केवल एक ही शब्द है और वह शब्द है भीरुता। संसारमें अपने लिए भीरुता और पराएके लिये भीरुताके भेदका निर्णय करके किसी बातकी सृष्टि नहीं हुई। इसलिये ज्यों ही भीरु शब्दका ध्यान आता है त्यों ही उसके साथ दृढ़तापूर्वक जकड़ी हुई अवज्ञाका भी ध्यान होता है। हम लोग बड़े परिवार और बड़े अपमानका बोझ एक साथ ही ढोते हैं।

इसके अतिरिक्त भारतवर्षके अधिकांश अँगरेजी समाचारपत्र सदा हम लोगोंके विरुद्ध रहते हैं। चाय रोटी और अंडेके साथ साथ हम लोगोंकी निन्दा भी भारतीय अँगरेजोंकी छोटी हाजिरीका एक अंग हो गई है। अँगरेजी साहित्य, गल्प, भ्रमण-वृत्तान्त, इतिहास, भूगोल, राजनीतिक प्रबन्ध और विद्रूपात्मक कवितायें, सभीमें भारतवासियों और विशेषतः शिक्षित बाबुओंके प्रति अँगरेजोंकी अरुचि बराबर बढ़ती ही जाती है।

भारतवासी अपनी झोंपड़ियोंमें पड़े पड़े उसका बदला चुकानेकी चेष्टा करते हैं लेकिन भला हम लोग उसका क्या बदला चुका सकते हैं! हम लोग अँगरेजोंकी कितनी हानि कर सकते हैं! हम लोग मनमें नाराज हो सकते हैं, घरमें बैठकर गाल बजा सकते हैं लेकिन अँगरेज यदि केवल दो ही उँगलियोंसे हमारा मुलायम कान पकड़ कर जग जोरसे मल दें तो हमें चुपचाप सह लेना पड़ता है। और यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि अँगरेजोंको इस प्रकार कान मलनेके छोटे और बड़े कितने प्रकार मालूम हैं और इसके लिये कितने अधिक अवसर मिलते हैं। अँगरेज मन ही मन हम लोगोंसे जितने ही विमुख होंगे और हम लोगोंकी ओरसे उनकी श्रद्धा जितना ही हट जायगी, हम लोगोंका सच्चा स्वभाव समझना, हम लोगोंका अच्छी तरह विचार

करना और हम लोगोंका उपकार करना भी उन लोगोंके लिये उतना ही अधिक दुस्साध्य होता जायगा। भारतवासियोंकी निरन्तर निन्दा और उनके प्रति अवज्ञा प्रकट करके अँगरेजी समाचारपत्र भारतवर्षके शासनका कार्य्य और भी कठिन करते जा रहे हैं। और हम लोग अँगरेजोंकी निन्दा करके केवल अपने निरुपाय असंतोषकी ही वृद्धि कर रहे हैं।

अबतक भारत पर अधिकार रखनेके सम्बन्धमें जो अभिज्ञता उत्पन्न हुई है उससे यह बात निश्चयात्मक रूपसे मालूम हो गई है कि अँगरेजोंके लिये डरनेका कोई कारण नहीं है। जब आजसे डेढ़ सौ वर्ष पूर्व ही इस प्रकार डरनेका कोई कारण नहीं था तब आजकलका तो कुछ कहना ही नहीं है। राज्यमें जो लोग उपद्रव मचा सकते थे अब उनके नाखून और दाँत नहीं रह गए और अभ्यासके अभावके कारण वे लोग इतने अधिक निर्जीव हो गए हैं कि स्वयं भारतवर्षकी रक्षा करनेके लिये सेना तैयार करना ही क्रमशः बहुत कठिन होता जा रहा है। लेकिन फिर भी अँगरेज लोग सेडिशन या राजद्रोहका दमन करनेके लिये सदा तैयार रहते हैं। इसका एक कारण है। वह यह कि प्रवीण राजनीतिज्ञ किसी अवस्थामें भी सतर्कताको शिथिल नहीं होने देते। जो सावधान रहता है उसका विनाश नहीं होता।

अतः बात केवल इतनी ही है कि अँगरेज लोग बहुत अधिक सावधान हैं। लेकिन दूसरी ओर अँगरेज यदि क्रमशः भारतद्रोही होते जायँ तो राजकार्य्यमें वास्तविक विघ्नोंका उत्पन्न होना सम्भव है। यद्यपि उदासीन भावसे भी कर्त्तव्यपालन किया जा सकता है; किन्तु जहाँ आन्तरिक विद्वेष हो वहाँ कर्त्तव्यपालन करना मनुष्यकी शक्तिके बाहर है।

हम लोगोंका देश भी वैसा ही है। जैसी धूप वैसी ही धूल। जैसी रूह वैसे ही फरिश्ते। साहब लोग बिना पंखेकी हवा खाए और बरफका पानी पीए जीते नहीं रह सकते। लेकिन दुर्भाग्यवश यहाँके पंखे-कुली रुग्ण-प्लीहा यातापतिल्ली लेकर सो जाते हैं और बरफ सब जगह सहजमें मिल नहीं सकता। अँगरेजोंके लिये भारतवर्ष रोग, शोक, स्वजन-विच्छेद और निर्वासनका देश है। इसलिये उन्हें बहुत अधिक वेतन लेकर इन सब त्रुटियोंकी पूर्ति कर लेनी पड़ती है। लेकिन कम्बख्त एक्सचेञ्ज (Exchange) उसमें भी झगड़ा खड़ा करना चाहता है। अँगरेजोंको स्वार्थसिद्धिके अतिरिक्त भारतवर्ष और क्या दे सकता है?

हाय! हतभागिनी भारतभूमि! तुम्हें तुम्हारा स्वामी पसन्द न आया। तुम उसे प्रेमके बन्धनमें न बाँध सकीं। लेकिन अब ऐसा काम करो जिससे उसकी सेवामें त्रुटि न हो। उसको बहुत यत्नसे पंखा झलो, उसके लिये खसका परदा टँगवाकर उसपर पानी छिड़को जिसमें वह अच्छी तरह स्थिर होकर दो घड़ी तुम्हारे घर बैठ सके। खोलो, अपने सन्दूक खोलो। तुम्हारे पास जो कुछ गहने आदि हों उन्हें बेच डालो और अपने स्वामीको भरपेट भोजन कराओ और भरजेब दक्षिणा दो। तौ भी वह तुमसे अच्छी तरहसे न बोलेगा, तौ भी वह नाराज ही रहेगा और तौ भी तुम्हारे मैकेकी निन्दा ही करेगा। आजकल तुमने लज्जा छोड़कर मान अभिमान करना आरम्भ किया है। तुम झनककर दो चार बातें कह बैठती हो। परन्तु यह व्यर्थका बकवाद करनेकी आवश्यकता नहीं। तुम मन लगाकर वही काम करो जिससे तुम्हारा विदेशी स्वामी सन्तुष्ट हो और आरामसे रहे। तुम्हारा सौभाग्य सदा बना रहे।

अँगरेज राजकवि टेनिसनने मरनेसे पहले अपने अन्तिम ग्रन्थमें सौभाग्यवश भारतवर्षका भी थोड़ासा स्मरण किया है।

कविवर टेनिसनने उक्त ग्रन्थमें 'अकबरका स्वप्न' नामकी एक कविता दी है। उस कवितामें अकबरने अपने प्रिय मित्रको रातका स्वप्न वर्णन करते हुए अपने धर्म्मका आदर्श और जीवनका उद्देश्य बतलाया है। अकबरने भिन्न भिन्न धर्म्मोंमें जो एकता तथा भिन्न भिन्न जातियोंमें प्रेम और शान्ति स्थापित करनेके लिये जो चेष्टा की थी, उसने स्वप्नमें देखा कि मेरे उत्तराधिकारियों तथा परवर्तियोंने उस चेष्टाको व्यर्थ तथा मेरे कार्योंको नष्ट कर दिया है। अन्तमें जिस ओर सूर्यास्त होता है उस ओर (पश्चिम) से विदेशियोंके एक दलने आकर उसके उस टूटे-फूटे और ढहे हुए मन्दिरको एक एक पत्थर चुनकर फिरसे प्रतिष्ठित कर दिया है और उस मन्दिरमें सत्य और शान्ति, प्रेम और न्यायपरताने फिरसे अपना सिंहासन स्थापित कर लिया है।

हम प्रार्थना करते हैं कि कविका यह स्वप्न सफल हो। आजतक इस मन्दिरके पत्थर आदि तो चुने गए हैं। बल, परिश्रम और निपुणताके द्वारा जो कुछ काम हो सकता है उसे करनेमें भी किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं हुई है। लेकिन अभीतक इस मन्दिरमें समस्त देवताओंके अधिदेवता प्रेमदेवकी प्रतिष्ठा नहीं हुई है।

प्रेम वास्तवमें भावात्मक हैं, अभावात्मक नहीं। अकबरने समस्त धर्मोंका विरोध नष्ट करके प्रेमकी एकता स्थापित करनेकी जो चेष्टा की थी वह भावात्मक ही थी। उसने अपने हृदयमें एकताका एक आदर्श खड़ा किया था। उसने उदार हृदय लेकर श्रद्धाके साथ सब धर्म्मोंके अन्तरमें प्रवेश किया था। वह एकाग्रता और निष्ठाके साथ हिन्दू मुसल-

मान, ईसाई और पारसी आदि धर्मज्ञोंसे धर्मालोचना सुना करता था। उसने हिन्दू स्त्रियोंको अपने अन्तःपुरमें, हिन्दू अमात्योंको मंत्रीसभामें और हिन्दू वीरोंको सेनानायकतामें प्रधान आसन दिया था। उसने केवल राजनीतिके द्वारा ही नहीं बल्कि प्रेमके द्वारा समस्त भारतवर्षको, राजा और प्रजाको एक करना चाहा था। सूर्यास्तभूमि (पश्चिम) से विदेशियोंने आकर हम लोगोंके धर्ममें किसी प्रकारका हस्तक्षेप नहीं किया, लेकिन प्रश्न यह है कि वह निर्लिप्तता प्रेमके कारण है या राजनीतिके कारण? क्योंकि इन दोनोंमें आकाश और पातालका अन्तर है।

किन्तु एक महदाशय भाग्यवान् पुरुषने जो बहुत ऊँचा आदर्श खड़ा किया था उस आदर्शकी किसी एक सारीकी सारी जातिसे कोई आशा नहीं की जा सकती। इसीलिये यह बतलाना कठिन है कि कविका उक्त स्वप्न कब सत्य होगा। और यह कहना इस लिये और भी कठिन है, कि राजा और प्रजामें जो आने जानेका मार्ग था उस मार्गको दोनों पक्ष बराबर काँटे बिछाकर घेरते जा रहे हैं और दिनपर दिन वह मार्ग बन्द होता जाता है। नए नए विद्वेष खड़े होकर मिलन-क्षेत्रको आच्छन्न करते जा रहे हैं।

राज्यमें इस प्रेमके अभावका आजकल हम इतना अधिक अनुभव कर रहे हैं कि जिसके कारण मन ही मन लोगोंमें एक प्रकारकी आशंका और अशान्ति बढ़ रही है। उसका एक दृष्टान्त लीजिए। आजकल हिन्दुओं और मुसलमानोंमें जो दिनपर दिन बहुत अधिक विरोध बढ़ता जाता है उसके सम्बन्धमें हम आपसमें किस प्रकारकी बातचीत किया करते हैं? क्या हम लोग लुक छिपकर यह बात नहीं कहते कि इस उत्पातका प्रधान कारण यही है कि अँगरेज यह विरोध दूर करनेके लिये यथार्थ रूपसे प्रयत्न नहीं करते। बात यह है कि अँगरेजोंकी

राजनीतिमें प्रेमनीतिके लिये कोई स्थान ही नहीं है। भारतवर्षके दो प्रधान सम्प्रदायोंमें उन लोगोंने प्रेमके बीजकी अपेक्षा ईर्ष्याका बीज ही अधिक बोया है। सम्भव है कि ऐसा काम उन्होंने बिना इच्छाके ही किया हो; लेकिन अकबरने प्रेमके जिस आदर्शको सामने रखकर टुकड़े टुकड़े भारतवर्षको एक करनेकी चेष्टा की थी वह आदर्श अँगरेजोंकी पालिसीमें नहीं है। इसीलिये इन दोनों जातियोंका स्वाभाविक विरोध घटता नहीं है बल्कि दिनपर दिन उसके बढ़नेके ही लक्षण दिखाई देते हैं। केवल कानूनके द्वारा केवल शासनके द्वारा दोनों एक नहीं किए जा सकते। दोनोंको एक करानेके लिये उनके अन्तरमें प्रवेश करनेकी आवश्यकता होती है, उनकी वेदना समझनी पड़ती है, यथार्थ रूपसे प्रेम करना पड़ता है, स्वयं पास आकर और दोनोंके हाथ पकड़कर मेल कराना होता है। यदि केवल पुलिस तैनात करके और हथकड़ी पहनाकर शान्ति स्थापित की जाय तो उससे केवल दुर्द्धर्ष या बहुत ही प्रबल बलका परिचय मिलता है। लेकिन अकबरके स्वप्नमें यह बात नहीं थी। सूर्यास्तभूमिके कवि लोग यदि व्यर्थका और मिथ्या अहंकार छोड़कर विनीत प्रेमके साथ गम्भीर आक्षेप करते हुए अपनी जातिको उसके दोष दिखलावें और प्रेमके उस उच्च आदर्शकी शिक्षा दें तो उनकी जातिकी भी उन्नति हो और इस आश्रितवर्गका भी उपकार हो। अँगरेजोंमें इस समय जो आत्माभिमान, अपनी सभ्यताका जो गर्व, अपनी जातिका जो अहंकार है, क्या वह यथेष्ट नहीं है? कवि लोग क्या केवल उसी अग्निमें आहुति देंगे—उसीको बढ़ावेंगे। क्या अब भी नम्रताकी शिक्षा देने और प्रेमकी चर्चा करनेका समय नहीं आया? सौभाग्यके सबसे ऊँचे शिखरपर चढ़कर क्या अब भी अँगरेज कवि केवल आत्मघोषणा ही करेंगे।

लेकिन जिस अवस्थामें हम लोग पड़े हुए हैं उसे देखते हुए हम लोगोंके मुँहसे ऐसी बातोंका निकलना कुछ शोभा नहीं देता। इसीलिये कहनेमें भी हमें लज्जा मालूम होती है। विवश होकर प्रेमकी भिक्षा करनेके समान दीनता और किसी बातमें नहीं है। और बीच बीचमें इस सम्बन्धमें हम लोगोंको दो चार उल्टी-सीधी बातें सुननी भी पड़ती हैं।

हमें याद आता है कि कुछ दिन हुए भक्तिभाजन प्रतापचन्द्र मजूमदार महाशयके एक पत्रके उत्तरमें लंडनके 'स्पेक्टेटर' नामक पत्रने लिखा था कि आजकलके बंगालियोंमें बहुतसे अच्छे लक्षण हैं; लेकिन उनमें एक दोष दिखाई पड़ता है। उनमें Sympathy (सहानुभूति) की लालसा बहुत बढ़ गई है।

हमें अपना यह दोष मानना पड़ता है और अबतक हम जिस प्रकार सब बातें कहते आए हैं उसमें बराबर जगह जगह इस दोषका प्रमाण मिलता है। अँगरेजोंसे अपना आदर करानेकी इच्छा हम लोगोंमें कुछ अस्वाभाविक परिमाणमें बढ़ गई है। लेकिन उसका कारण यह है कि हम लोग स्पेक्टेटरकी तरह स्वाभाविक अवस्थामें नहीं हैं। हम लोग जिस समय बहुत प्यासे होकर एक लोटा पानी माँगते हैं, उस समय हमारे राजा चटपट हमारे सामने आधा बेल (फल) ला रखते हैं! किसी विशिष्ट समय पर आधा बेल बहुत कुछ उपकारक हो सकता है, लेकिन उससे भूख और प्यास दोनों एक साथ ही दूर नहीं हो सकतीं। अँगरेजोंकी सुनियमित और सुविचारित गवर्नमेण्ट बहुत उत्तम और उपादेय है, लेकिन उससे प्रजाके हृदयकी तृष्णा नहीं मिट सकती बल्कि उल्टे जिस प्रकार बहुत अधिक गरिष्ठ भोजन कर-

है। अँगरेजोंको यह जतला देना होता है कि हम भी तुम्हीं लोगोंकी तरह हैं। और जहाँ कोई उनसे भिन्न बात निकल आती है तो उसे चटपट वहीं दबा देनेकी इच्छा होती है। आदम और हौआ ज्ञानवृक्षका फल खानेसे पहले जिस सहज वेशमें घूमा करते थे वह बहुत ही शोभायुक्त और पवित्र था, लेकिन ज्ञानवृक्षका फल खानेके बादसे लेकर जबतक इस पृथ्वीपर दरजीकी दूकान नहीं खुली थी तबतक इसमें सन्देह नहीं कि उन लोगोंका वेश आदि अश्लीलता-निवारिणी सभामें निन्दनीय समझा जाता था। हम लोगोंके लिये भी यही सम्भव है कि नए आवरणमें हम लोगोंकी लज्जा दूर न होगी बल्कि और बढ़ जायगी। क्योंकि, अभीतक कपड़े सीनेका कोई ऐसा कारखाना नहीं खुला है जो सारे देशवासियोंके शरीर ढक सके। यदि हम इस प्रकार शरीर ढकना चाहेंगे तो एक तो ढके ही न जा सकेंगे और फिर इसके समान विडम्बनाकी बात और कोई हो नहीं सकती। जो लोग लोभमें पड़कर सभ्यतावृक्षका यह फल खा बैठे हैं उन लोगोंको बहुत ही परेशान होना पड़ता है। इन लोगोंको सिर्फ इसी लिये परदा टाँगकर सब काम करना पड़ता है कि जिसमें कोई अँगरेज यह न देख ले कि हम हाथसे खाते हैं या चौका लगाकर भोजन करने बैठते हैं। एटीकेट (Ettiquete) शास्त्रमें यदि जरासी भी त्रुटि हो जाय, अथवा अँगरेजी भाषा बोलनेमें जरासी भी भूल हो जाय, तो वे उसे पातकके समान समझते हैं और अपने सम्प्रदायमें यदि वे आपसमें एक दूसरेके साहबी आदर्शमें कुछ भी कमी देखते हैं तो लज्जा और अवज्ञा अनुभव करते हैं। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो नंगे रहनेकी अपेक्षा इस अधूरे कपड़े पहननेमें ही और कपड़े पहननेकी निष्फल चेष्टामें ही वास्तविक अश्लीलता है—इसीमें यथार्थ आत्म-अवमानना है।

जहाँ थोड़ा बहुत अँगरेजी ठाठ बनाया जाता है वहाँ असमानता या बेढंगापन और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है। उसका फल कुछ अधिक शोभायुक्त नहीं होता। इसी लिये रुचिपर दोहरा आघात होता है। अपने पुराने अभ्यासके कारण भारतवासियोंके निकट आकृष्ट होनेमें अँगरेज मनमें यही समझते हैं कि यह बड़ा अन्याय हो रहा है—ठगे जा रहे हैं और इस कारण उनका मन दूने वेगसे प्रतिहत होता है।

आधुनिक जापान युरोपीय सभ्यताका ठीक ठीक अनुयायी हो गया है। उसकी शिक्षा केवल बाहरी शिक्षा नहीं है। कल-कारखाने, शासन-प्रणाली, विद्या-विस्तार आदि सभी काम वह स्वयं अपने हाथोंसे चलाता है। उसकी पटुता देखकर युरोप विस्मित होता है और उसे ढूँढ़नेपर भी कहीं कोई त्रुटि नहीं मिलती। लेकिन फिर भी युरोप अपने विद्यालयके इस सबसे बड़े छात्रको विलायती वेश-भूषा और आचार-व्यवहारका अनुकरण करते हुए देखकर विमुख हुए बिना नहीं रह सकता। जापान अपनी इस अद्भुत कुरुचि, इस हास्यजनक असंगतिके सम्बन्धमें स्वयं बिलकुल अन्धा है। किन्तु युरोप इस छद्म-वेशी एशियावासीको देखकर मनमें बहुत कुछ श्रद्धा रखनेपर भी बिना हँसे हुए नहीं रह सकता।

और फिर क्या हम लोग युरोपके साथ और समस्त विषयोंमें इतने अधिक एक हो गए हैं कि बाहरी अनेकता दूर करते ही असंगति नामक बहुत बड़ा रुचिदोष न होगा?

यह तो हुई एक बात, दूसरी बात यह है कि इस उपायसे लाभ तो गया चूल्हेमें उल्टे मूल धनकी ही हानि होती है। अँगरेजोंके साथ जो अनेकता है वह तो है ही, दूसरे अपने देशवासियोंके साथ भी

अनेकता सूचित होती है। आज यदि हम अँगरेजोंकी नकल बनकर किसी अँगरेजके पास सम्मान प्राप्त करनेके लिये जायँ तो हमारे जो भाई अँगरेजोंकी नकल नहीं बन सकते उन लोगोंको 'अपना' कहनेमें हमें स्वभावतः ही कुछ संकोच होगा। उनके लिये बिना लज्जा अनुभव किए हमारे लिये और कोई उपाय ही नहीं है। अपने विषयमें लोगोंसे यही कहनेकी प्रवृत्ति होती है कि हम अपने गुणोंसे इन सब लोगोंसे अलग होकर स्वतंत्र जातिमें मिल गए हैं।

इसका अर्थ ही यह है कि हम अपना जातीय सम्मान बेचकर, आत्म-सम्मान मोल लें। यह एक प्रकारसे अँगरेजोंके सामने यही कहना है कि साहब इन जंगलियोंके साथ आप चाहे जैसा व्यवहार करें; परन्तु जब हम बहुत कुछ आपहीकी तरह शकल बनाकर आए हैं तब हम अपने मनमें इस बातकी बहुत बड़ी आशा रखते हैं कि आप हमें अपने पाससे दूर न कर देंगे।

अब आप ही सोच लीजिए कि इस प्रकारके कंगालपनसे कुछ प्रसाद भले ही मिल जाय, लेकिन क्या इससे कभी अपने अथवा अपनी जातिके सम्मानकी रक्षा हो सकती है?

कर्णने जिस समय अश्वत्थामासे कहा था कि तुम ब्राह्मण हो, मैं तुम्हारे साथ क्या युद्ध करूँ! तब अश्वत्थामाने कहा था कि क्या तुम इसीलिये मुझसे युद्ध नहीं कर सकते कि मैं ब्राह्मण हूँ? अच्छा तो लो, मैं अपना यह यज्ञोपवीत तोड़कर फेंक देता हूँ।

यदि कोई अँगरेज हमसे हाथ मिलाकर कहे अथवा हमारे नामके साथ एस्क्वायर (Esquire=महाशय) जोड़कर लिखे कि अच्छा जब कि तुम यथासंभव अपनी जातीयताको ताकपर रखकर आए हो तो हम तुम्हें अपने क्लबका सभासद बना लेते हैं, हम लोगोंके होट-

लमें तुम्हें स्थान दिया जाता है और यदि तुम हमसे भेंट करनेके लिये आओगे तो एकाद बार हम भी तुम्हारे यहाँ बदलेकी भेंट करनेके लिये तुम्हारे यहाँ आ सकेंगे, तो क्या हम उसी समय अपने आपको परम सम्मानित समझकर आनन्दके मारे फूल उठेंगे अथवा यह कहेंगे कि क्या केवल इतनेके लिये ही हमारा सम्मान है! यदि यही बात हो तो हम अपना यह नकली वेश उतारकर फेंक देते हैं! जबतक हम अपनी जातिको यथार्थ सम्मानके योग्य न बना सकेंगे तबतक हम स्वाँग सजकर और अपवाद-स्वरूप बनकर तुम्हारे दरवाजे न आवेंगे।

हम तो कहते हैं कि हमारा एक मात्र व्रत यही है। हम न तो किसीको ठगकर सम्मान प्राप्त करेंगे और न सम्मानको अपनी ओर आकृष्ट करेंगे। हम अपने आपमें ही सम्मान अनुभव करेंगे। जब वह दिन आवेगा तब हम संसारकी जिस सभामें चाहेंगे उस सभामें प्रवेश कर सकेंगे। उस दशामें हमारे लिये नकली वेश, नकली नाम, नकली व्यवहार और भिक्षामें माँगे हुए मानकी कोई आवश्यकता न रह जायगी।

लेकिन इसका उपाय सहज नहीं है। हम पहले ही कह चुके हैं कि सहज उपायसे कभी कोई दुस्साध्य कार्य्य नहीं होता। यह कार्य बहुत ही कठिन है इसी लिये और सब कार्योंको छोड़कर केवल इसीकी ओर विशेष ध्यान देना पड़ेगा।

कार्य्यमें प्रवृत्त होनेसे पहले हमें यह प्रण कर लेना पड़ेगा कि जबतक वह सुअवसर न आवेगा तबतक हम अज्ञात वासमें रहेंगे।

निर्माण होनेकी अवस्थामें गुप्त रहनेकी आवश्यकता होती है। बीज मिट्टीके नीचे छिपा रहता है। भ्रूण गर्भके अन्दर गुप्तरूपसे रक्षित

रहता है। जिन दिनों बालकको शिक्षा दी जाती है उन दिनों यदि उसे सांसारिक बातोंमें अधिक मिलने दिया जाय तो वह प्रवीण समाजमें गिने जानेकी दुराशासे प्रवीण लोगोंका अनुचित अनुकरण करके उचित समयसे पहले ही पक्व हो जायगा। वह अपने मनमें समझने लगेगा कि मैं एक गण्य माण्य व्यक्त हो गया हूँ। फिर उसके लिये नियमानुकूल शिक्षाकी आवश्यकता न रह जायगी—विनय उसके लिये व्यर्थ और निरर्थक हो जायगी।

जब पाण्डव अपना प्राचीन गौरव प्राप्त करने चले थे तब उन्होंने पहले अज्ञातवासमें रहकर बल संचित किया था। संसारमें उद्योग-पर्वसे पहले अज्ञातवास-पर्व होता है।

आजकल हम लोग आत्म-निर्माण और जाति-निर्माणकी अवस्थामें हैं। हम लोगोंके लिये यह अज्ञातवासका समय है।

लेकिन यह हम लोगोंका दुर्भाग्य है कि हमलोग बहुत अधिक प्रकाशित हो गए हैं—संसारके सामने बहुत अधिक आ गए हैं। हम लोग बहुत अपरिपक्व अवस्थामें ही अधीर भावसे अंडेके बाहर निकल पड़े हैं। इस प्रतिकूल संसारमें हमारे लिये यह दुर्बल और अपरिणत शरीर लेकर अपनी पुष्टि करना बहुत ही कठिन हो गया है।

संसारकी रणभूमिपर आज हम कौनसा अस्त्र लेकर खड़े हुए हैं? केवल वक्तृता और आवेदन ही न? हम कौनसी ढाल लेकर आत्मरक्षा करना चाहते हैं? केवल कपट-वेश ही? इस प्रकार कितने दिनोंतक काम चलेगा और इसका कहाँतक फल होगा?

एक बार अपने मनमें कपट छोड़कर सरल भावसे यह स्वीकृत करनेमें क्या दोष है कि अभीतक हम लोगोंके चरित्र-बलका जन्म नहीं हुआ? हम लोग दलबन्दी, ईर्षा और क्षुद्रतासे जीर्ण हो रहे हैं। हम

हम समझते हैं कि इसी सौभाग्य-गर्वसे ही हमारा सबसे अधिक सर्व-नाश होगा, हम एकान्तमें बैठकर अपने कर्त्तव्यका पालन न कर सकेंगे। हमारा मन सदा साशंक और चंचल रहेगा और अपने दरिद्र सम्बन्धियोंका अप्रसिद्ध घर हमें बहुत अधिक सूना जान पड़ेगा। जिन लोगोंके लिये अपने प्राण दे देना हमारा कर्त्तव्य है उन लोगोंके साथ आत्मीयके समान व्यवहार करनेमें हमें लज्जा जान पड़ेगी।

अँगरेज लोग अपने आमोद-प्रमोद, आहार-विहार, आसंग-प्रसंग, बन्धुत्व और प्रेमसे हम लोगोंको बिलकुल बहिष्कृत करके हमारे लिये द्वार बन्द रखना चाहते हैं तो भी यदि हम लोग झुककर, दबकर, कलसे, बलसे, छलसे उस द्वारमें प्रवेश करनेका थोड़ासा अधिकार पा जाते हैं, राजसमाजसे हमारा यदि बहुत ही थोड़ा सम्बन्ध हो जाता है, हम उसकी केवल गंध भी पा जाते हैं तो हम लोग इतने कृतार्थ हो जाते हैं कि उस गौरवके सामने हमें अपने देशवासियोंकी आत्मीयता बिलकुल तुच्छ जान पड़ती है। ऐसे अवसरपर, ऐसी दुर्बल मानसिक अवस्थामें उस सर्वनाशी अनुग्रह मद्यको हमें बिलकुल अपेय और अस्पृश्य समझना चाहिए और उसका सर्वथा परिहार करना चाहिए।

इसका एक और भी कारण है। अँगरेजोंके अनुग्रहको केवल गौरव समझकर हमारे लिये सर्वथा निस्स्वार्थ भावसे उसका भोग करना भी कठिन है। इसका कारण यह है कि हम लोग दरिद्र हैं और पेटकी आग केवल सम्मानकी वर्षासे नहीं बुझ सकती। हम यह चाहते हैं कि अवसर पड़नेपर उस अनुग्रहके बदलेमें और कुछ भी ले सकें। हम लोग केवल अनुग्रह नहीं चाहते बल्कि उसके साथ ही साथ अन्नकी भी आशा रखते हैं। हम लोग केवल यही नहीं चाहते कि साहब

हमसे हाथ मिलावें बल्कि हमारे लिये यह भी आवश्यक है कि नौकरी परका हमारा वेतन बढ़ जाय। यदि आरम्भमें दो दिनतक हम साहब बहादुरके यहाँ मित्रकी भाँति आते जाते हैं तो तीसरे दिन भिखमंगोंकी तरह उनके सामने हाथ फैलानेमें भी हमें लज्जा नहीं आती। इस लिये साहबके साथ हमारा जो सम्बन्ध होता है वह बहुत ही हीन हो जाता है। एक ओर तो हम इस लिये अपने मनमें नाराज हो जाते हैं कि अँगरेज हम लोगोंके साथ समानताका भाव नहीं रखते और तदनुकूल हमारा सम्मान नहीं करते और दूसरी ओर उनके दरवाजेपर जाकर हम भीख माँगना भी नहीं छोड़ते।

जो भारतवासी अँगरेजोंसे मिलनेके लिये जाते हैं उन्हें वे अँगरेज अपने मनमें उम्मेदवार अनुग्रहप्रार्थी अथवा उपाधिके प्रत्याशी समझे बिना नहीं रह सकते। क्योंकि अँगरेजोंके साथ भेंट करनेका हमारे लिये और कोई कारण या सम्बन्ध तो है ही नहीं। उनके घरके किवाड़ बन्द हैं और हमारे दरवाजेपर ताला लगा है। तब आज अचानक जो आदमी अङ्गा और पगड़ी पहनकर कुछ शंकित भावसे चला आ रहा है, एक अभद्रकी भाँति अनभ्यस्त और अशोभित भावसे सलाम कर रहा है, यह नहीं समझ सकता कि मैं कहाँ बैठूँ और हिचक हिचककर बातें कर रहा है, उसके मनमें सहसा इतनी विरह-वेदना कहाँसे उत्पन्न हो गई जो वह चपरासीको थोड़ा बहुत पारितोषिक देकर भी साहबका मुख-चन्द्र देखने आ रहा है?

जिसकी अवस्था बहुत ही गई-बीती हो वह बिना बुलाए और बिना आदरके किसी भाग्यवानके साथ घनिष्टता बढ़ानेके लिये कभी न जाय। क्योंकि इससे दोनोंमेंसे किसी पक्षका मंगल नहीं होता। अँगरेज लोग इस देशमें आकर क्रमशः जो नई मूर्ति धारण करते जाते

हैं, क्या उसका बहुत कुछ कारण हम लोगोंकी हीनता ही नहीं है ? इसलिये भी हम कहते हैं कि जब अवस्था इतनी बुरी है तब यदि हमारे सम्बन्ध और संघर्षसे अँगरेज लोग रक्षित रहेंगे तो उन लोगोंका चरित्र भी इतनी जल्दी विकृत न होगा। इसमें दोनों ही पक्षोंका लाभ है।

अतएव सब बातोंका अच्छी तरह ध्यान रखकर राजा और प्रजाका आपसका द्वेष शान्त रखनेके लिये सबसे अच्छा उपाय यही जान पड़ता है कि हम लोग अँगरेजोंसे सदा दूर रहें और एकान्त मनसे अपने समस्त निकट-कर्तव्योंके पालनमें लग जायँ। केवल भिक्षा करनेसे कभी हमारे मनमें यथार्थ सन्तोष न होगा। आज हम लोग यह समझते हैं कि जब हमें अँगरेजोंसे कुछ अधिकार मिल जायँगे तब हम लोगोंके सब दुख दूर हो जायँगे। लेकिन यदि भीख माँगकर हम सारे अधिकार भी प्राप्त कर लेंगे तब हम देखेंगे कि हमारे हृदयमेंसे लांछना किसी प्रकार दूर ही नहीं होती। बल्कि जबतक हमें अधिकार नहीं मिलते तबतक हमारे मनमें जो थोड़ी बहुत सान्त्वना है अधिकार प्राप्त करने पर वह सान्त्वना भी न रह जायगी। हमारे हृदयमें जो शून्यता है जबतक उसकी पूर्त्ति न होगी तबतक हमें किसी प्रकार शान्ति न मिलेगी। जब हम अपने स्वभावको सारी क्षुद्रताओंके बन्धनसे मुक्त कर सकेंगे तभी हम लोगोंकी यथार्थ दीनता दूर होगी और तभी हम लोग तेजके साथ, सम्मानके साथ अपने शासकोंसे भेंट करनेके लिये जा आ सकेंगे।

हम कुछ ऐसे पागल नहीं हैं जो यह आशा करें कि सारा भारतवर्ष पद, प्रभाव और अँगरेजोंके प्रसादकी चिन्ता छोड़कर, ऊपरी तड़क भड़क और यश तथा प्रसिद्धिका ध्यान छोड़कर, अँगरेजोंको

आकृष्ट करनेके प्रबल मोहसे अपनी रक्षा करके, मनोयोगपूर्वक अविचलित चित्तसे चरित्रबलका संचय करने लगेगा, ज्ञान और विज्ञान सीखने लगेगा, स्वाधीन व्यापारमें प्रवृत्त हो जायगा, सारे संसारकी यात्रा करके लोकव्यवहार सीखेगा, परिवार और समाजमें सत्यके आचरण और सत्यके अनुष्ठानका प्रचार करेगा, मनुष्य जिस प्रकार अपना मस्तक सहजमें लिए चलता है उसी प्रकार अनायास और स्वाभाविक रूपमें वह अपना सम्मान बराबर रक्षित रखकर लिए चलेगा, लालायित और लोलुप होकर दूसरोंके पास सम्मानकी भिक्षा माँगने न जायगा और 'धर्मो रक्षति रक्षितः' वाले सिद्धान्तका गूढ तात्पर्य पूर्ण रूपसे अपने मनमें समझ लेगा। यह बात सभी लोग बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि जिस तरफ सुभीतेकी ढालू जगह होती है मनुष्य अनजानमें धीरे धीरे उसी तरफ ढलता जाता है। यदि हैटकोट पहनने, अँगरेजी भाषा बोलने और अँगरेजोंके दरवाजे जानेमें कोई सुभीता हो तो कुछ लोग हैट-कोट पहनने लग जायँगे, अपने लड़कोंको बहुत कुछ प्रयत्न करके मातृभाषाका बोलना भुला देंगे और साहबोंके दरबानोंके साथ अपने पिता या भाईसे भी बढ़कर आत्मीयता स्थापित करने लग जायँगे। इस प्रवाहको रोकना बहुत ही कठिन है। लेकिन फिर भी अपने मनकी बातको स्पष्ट रूपसे प्रकट कर देना आवश्यक है। चाहे अरण्य-रोदन ही क्यों न हो तौ भी हमें कहना ही पड़ता है कि अँगरेजीका प्रचार करनेसे कोई फल न होगा। देशकी स्थायी उन्नति तभी होगी जब शिक्षाकी नीव देशी भाषाओंपर रक्खी जायगी। अँगरेजोंसे आदर प्राप्त करनेका भी कोई फल न होगा। अपने मनुष्यत्वको सचेतन और जाग्रत करनेमें ही यथार्थ गौरव है। यदि किसीको धोखा देकर कुछ वसूल कर लिया जाय तो उससे यथार्थ प्राप्ति नहीं

दो एक जबरदस्तियाँ पकड़ी जायँ तो उसके लिये समाचारपत्रोंमें इतने जोरोंसे पश्चात्ताप करने क्यों बैठें ?

लेकिन बाल्यावस्थामें जो बात अच्छी मालूम होती है बड़े होनेपर वह बात अच्छी नहीं मालूम होती। कोई एक दुष्ट लालची बालक अपनेसे किसी छोटे और दुर्बल बालकके हाथमें मिठाई देखकर जबरदस्ती उससे छीन लेता है और क्षणभरमें ही अपने मुँहमें रख लेता है। उस असहाय बालकको रोते हुए देखकर भी उसके मनमें जरा भी पछतावा नहीं होता बल्कि यहाँतक कि वह उस दुर्बल बालकके गालपर एक तमाचा लगाकर जबरदस्ती उसका रोना बन्द करनेकी चेष्टा करता है और उसे देखकर दूसरे बालक भी मन ही मन उसके बाहुबल और दृढ़संकल्पकी प्रशंसा करते हैं।

यदि उस बलवान् बालकको बड़े होनेपर भी लोभ रह जाता है तो फिर वह थप्पड़ मारकर दूसरेकी मिठाई नहीं छीनता बल्कि छल करके उससे ले लेता है और यदि वह पकड़ा जाय तो कुछ लज्जित और अप्रतिभ भी होता है। उस समय वह अपने परिचित पड़ोसीपर हाथ साफ करनेका साहस नहीं करता। अपने गाँवसे दूरके किसी दरिद्र गाँवकी असभ्य माताके नंगे बालकके हाथमें जब वह एक समयका एक मात्र खाद्य पदार्थ देखता है, तब वह चारों ओर देखकर चुपचाप झपटकर उस पदार्थको ले लेता है और जब वह बच्चा जोर जोरसे चिल्लाने लगता है तब वह अपनी जातिके आनेजानेवाले पथिकोंसे आँखका इशारा करके कहता है कि इस असभ्य काले बालकको मैंने अच्छी तरह दंड देकर ठीक कर दिया है! लेकिन वह यह नहीं स्वीकार करता कि मुझे भूख लगी थी इस लिये मैंने उसके हाथका भोजन छीनकर खा लिया है।

पुराने जमानेकी डकैती और आज कलकी चोरीमें बहुत अन्तर है। आजकलके अपहरणमें प्राचीन कालका वह निर्लज्ज असंकोच और बलका अभिमान रही नहीं सकता। आजकल अपने कार्यके सम्बन्धमें अपना ज्ञान उत्पन्न हो गया है, इस लिये आजकल प्रत्येक कार्य्यके लिये न्याय-विचारके सामने उत्तरदायी होना पड़ता है। इससे काम भी पहलेकी तरह सहजमें पूरा नहीं उतरता और गालियाँ भी खानी पड़ती हैं। यदि कोई पुराना डाकू दुर्भाग्यवश इस बीसवीं शताब्दीमें जन्म ग्रहण कर ले तो उसका अविर्भाव बहुत ही असामायिक हो जायगा।

समाजमें इस प्रकारका असामयिक आविर्भाव सदा हुआ ही करता है। डाकू तो बहुतसे उत्पन्न होते हैं परन्तु वे सहसा पहचाने नहीं जाते। अनुपयुक्त समय और अनुपयुक्त स्थानमें पड़कर बहुतसे अवसरोंपर वे स्वयं अपने आपको ही नहीं पहचानते। इधर वे गाड़ीपर चढ़कर घूमते हैं, समाचारपत्र पढ़ते हैं, स्त्रीसमाजमें मीठी मीठी बातें करते हैं। कोई इस बातका सन्देह ही नहीं करता कि इस सफेद कमीज या काले कुर्तेमें राबिन हुडका नया अवतार घूम रहा है।

युरोपके बाहर निकलकर ये लोग सहसा अपनी पूर्ण शक्तिसे प्रकाशित हो जाते हैं। धर्मनीतिके आवरणसे मुक्त उस उत्कट रुद्रमूर्तिकी बात हम पहले ही कह चुके हैं। लेकिन युरोपके समाजमें ही जो राखसे ढके हुए बहुतसे अँगारे हैं उनका ताप भी कुछ कम नहीं हैं।

यही लोग आजकल कहते हैं कि बलनीतिके साथ यदि प्रेमनीति भी मिला दी जाय तो उससे नीतिका नीतित्व तो बढ़ सकता है परन्तु बलका बलत्व घट जाता है। प्रेम और दया आदिकी बातें सुननेमें तो बहुत अच्छी जान पड़ती है लेकिन जिस जगह हम लोगोंने रक्तपात करके अपना प्रभुत्व स्थापित किया है उस जगह जब नीतिदुर्बल नई

कि जीवनकी पवित्रता अर्थात् जीवनमें हस्तक्षेप करने (हत्या करने अथवा हत्याकी चेष्टा करने)की परम दूषणीयताके सम्बन्धमें भारतवासियोंकी धारणा अँगरेजोंके मुकाबलेमें बहुत ही परिमित और कम है। इसीलिये भारतवासी जूरियोंके मनमें किसी हत्या करनेवालेके प्रति यथोचित विद्वेष उत्पन्न नहीं होता।

जो लोग मांस खानेवाली जातिके हैं और जिन्होंने बड़े बड़े रोमाञ्चकारी हत्याकाण्ड करके पृथ्वीके दो नए आविष्कृत महादेशोंमें अपने रहनेके लिये स्थान साफ कर लिया है और जो इस समय तलवारके जोरसे तीसरे महादेशकी भी प्रच्छन्न छातीको धीरे धीरे फाड़ करके उसकी कुछ फसलको सुखसे खानेके उद्योगमें लगे हुए हैं, वे ही यदि निमन्त्रण-सभामें मजेमें और अहंकार करते हुए नैतिक आदर्शके ऊँचे दण्डपर चढ़ बैठें और उसीपरसे जीवनकी पवित्रता और प्राणहिंसाकी अकर्त्तव्यताके सम्बन्धमें अहिंसक भारतवर्षको उपदेश देने लगें तब केवल 'अहिंसा परमो धर्म्मः' इस शास्त्रवाक्यका स्मरण करके ही चुप रह जाना पड़ता है।

यह बात आजसे प्रायः दो वर्ष पहलेकी है।* सभी लोग जानते हैं कि इस घटनाके बाद अबतक इन दो वर्षोंमें अँगरेजोंके हाथों बहुतसे भारतवासियोंकी अपमृत्यु हुई है और अँगरेजी अदालतोंमें इन सब हत्याओंमें एक अँगरेजका भी दोष प्रमाणित नहीं हुआ। समाचारपत्रोंमें इस सम्बन्धमें बराबर समाचार देखनेमें आते हैं और जब कोई ऐसा समाचार देखनेमें आता है तब हमें भारतवासियोंके प्रति उसी मुँड़ी हुई मोछ और दाढ़ी तथा लम्बी नाकवाले अध्यापककी

---

* यह निबंध सन् १३०१ फसलीमें अर्थात् आजसे प्रायः २५ वर्ष पहले लिखा गया था।—अनुवादक।

तीव्र घृणायुक्त बात और जीवनहत्याके सम्बन्धमें उसके नैतिक आदर्शकी श्रेष्ठताका अभिमान याद आ जाता है। पर इस बातको याद करके हमारे हृदयको कुछ भी शान्ति नहीं मिलती।

भारतवासियोंके प्राण और अँगरेजोंके प्राण फाँसीवाली लकड़ीके अटल तराजूपर रखकर एक ही बाँटसे तौले जाते हैं, जान पड़ता है कि अँगरेज लोग इसे मन ही मन राजनैतिक कुदृष्टान्त स्वरूप समझते हैं।

अँगरेज लोग अपने मनमें यह बात समझ सकते हैं कि हम थोड़ेसे प्रवासी जो पचीस करोड़ विदेशियोंपर शासन कर रहे हैं सो यह शासन किसके बलसे हो रहा है? केवल अस्त्रके ही बलसे नहीं बल्कि नामके बलसे भी। इसीलिये सदा विदेशियोंके मनमें इस बातकी धारणा बनाए रखना आवश्यक है कि तुम लोगोंकी अपेक्षा हम पचीस करोड़ गुना अधिक श्रेष्ठ हैं। यदि हम इस धारणाका लेश मात्र भी उत्पन्न होने दें कि हम और तुम बराबर हैं तो इससे हमारा बल नष्ट होता है। दोनोंके बीचमें एक बहुत बड़ा परदा है। अधीन जातिके मनमें कुछ अनिर्दिष्ट आशंका और अकारण भय सैकड़ों हजारों सैनिकोंका काम करता है। भारतवासी जब यह देखते हैं कि आजतक न्यायालयमें हमारे प्राणोंके बदलेमें कभी किसी अँगरेजको प्राणत्याग नहीं करना पड़ा तब उनका वह सम्भ्रम और भी दृढ हो जाता है। वे मनमें समझते हैं कि हमारे प्राणों और किसी अँगरेजके प्राणोंमें बहुत अंतर है और इसीलिये असह्य अपमान अथवा नितान्त आत्मरक्षाके अवसरपर भी किसी अँगरेजके शरीरपर हाथ छोड़नेमें उन्हें बहुत आगा-पीछा करना पड़ता है।

यह बात जोर देकर कहना कठिन है कि अँगरेजोंके मनमें इस पालिसीका ध्यान स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूपसे है या नहीं। लेकिन इस बातका

बहुत कुछ निश्चयपूर्वक अनुमान किया जा सकता है कि वे अपने मन ही मन अपने जातिभाइयोंके प्राणोंकी पवित्रता बहुत अधिक समझते हैं। यदि कोई अँगरेज किसी भारतवासीकी हत्या कर डाले तो अवश्य ही वह इस हत्यासे बहुत दुखी होता है। उसे वह अपने मनमें एक 'ग्रेट मिस्टेक' (बहुत बड़ी भूल) यहाँतक कि 'ग्रेट शेम' (बहुत लज्जाकी बात) की बात भी समझ सकता है। लेकिन इसके बदलेमें दंडस्वरूप किसी युरोपियनके प्राण लेना कभी समुचित नहीं समझा जाता। यदि कानूनमें फाँसीकी अपेक्षा कोई और छोटा दंड निर्दिष्ट होता तो भारतवासीकी हत्याके अपराधमें अँगरेजको दंड मिलनेकी बहुत अधिक संभावना होती। जिस जातिको अपनी अपेक्षा बहुत अधिक निकृष्ट समझा जाता हो उस जातिके सम्बन्धमें कानूनकी धाराओंमें पक्षपातहीनताका विधान भले ही हुआ करे लेकिन हाकिमके अन्तःकरणमें पक्षपातहीनताके भावका रक्षित रहना कठिन हो जाता है। उस अवसरपर प्रमाणकी साधारण त्रुटि, गवाहकी सामान्य भूल और कानूनकी भाषाका तिलमात्र छिद्र भी स्वभावतः बढ़कर इतना बड़ा हो जाता है कि अँगरेज अपराधी अनायास ही उसमेंसे निकलकर बाहर जा सकता है।

हमारे देशके लोगोंकी पर्यवेक्षण शक्ति और घटना-स्मृति वैसी अच्छी और प्रबल नहीं है। हमें अपना यह दोष स्वीकृत करना ही पड़ेगा कि हम लोगोंके स्वभावमें मानसिक शिथिलता और कल्पनाकी उच्छृंखलता है। यदि हम किसी घटनाके समय ठीक उसी जगह उपस्थित रहें तो भी आदिसे अन्ततक उस घटनाकी सारी बातें क्रमानुसार हमें याद नहीं रह सकतीं। इसीलिये हम लोगोंके वर्णनमें असंगति और संशय रहा करता है और भयके कारण अथवा

तर्कके सामने परिचित सत्य घटनाका सूत्र भी हम खो बैठते हैं। इसी लिये हम लोगोंके गवाहोंके सच और झूठका सूक्ष्मरूपसे निर्धारण करना विदेशी विचारकोंके लिये सदा ही कठिन होता है। और तिसपर अभियुक्त जब उन्हींके देशका होता है तब यह कठिनता सौगुनी बल्कि हजार गुनी हो जाती है। और फिर विशेषतः जब स्वभावसे ही अँगरेजोंके सामने कम पहननेवाले, कम खानेवाले, कम प्रतिष्ठावाले और कम बलवाले भारतवासीके 'प्राणकी पवित्रता' उनके देशभाइयोंके मुकाबलेमें बहुत ही कम और परिमित होती है तब भारतवासियोंके लिये यथोचित प्रमाण संग्रह करना एक प्रकारसे बिलकुल असंभव हो जाता है। इस तरह एक तो हम लोगोंके गवाह ही दुर्बल होते हैं और फिर हमारे तिल्ली आदि शरीर-यंत्र बहुत कुछ त्रुटिपूर्ण बतलाये जाते हैं, इस लिये हम लोग बहुत ही सहजमें मर भी जाते हैं और इस संबंधमें न्यायालयसे उचित विचार कराना भी हम लोगोंके लिये दुस्साध्य होता है।

लज्जा और दुःखके साथ हमें इन सब दुर्बलताओंको स्वीकृत करना पड़ता है, लेकिन उसके साथ ही साथ इस सत्य बातको भी प्रकाशित कर देना उचित जान पड़ता है कि इस प्रकारकी घटनाओंके लगातार होनेके कारण इस देशके लोगोंका चित्त बहुत अधिक क्षुब्ध होता जाता है। साधारण लोग कानून और प्रमाणोंका सूक्ष्म विचार नहीं कर सकते। यह बात बार बार और बहुत ही थोड़े थोड़े समयपर देखनेमें आती है कि भारतवासीकी हत्या करनेपर कभी किसी अँगरेजको प्राणदण्ड नहीं दिया जाता और इस बातको देखते तथा समझते हुए भारतवासियोंके मनमें अँगरेजोंकी निष्पक्ष न्यायपरताके सम्बन्धमें बहुत बड़ा सन्देह उत्पन्न होता है।

बिलकुल ध्रुव है कि बहुत अधिक अपमानित होने पर भी एक मुहर्रिर किसी अँगरेजको उलट कर मार नहीं सकता और हमारी समझमें केवल इसीलिये अँगरेजोंको अधिक दोषी ठहराना बहुत ही अनावश्यक और लज्जाजनक है।

इस बातकी ओर हम लोगोंका ध्यान रखना उचित हो सकता है कि मार खानेवाले मुहर्रिरको कानूनके अनुसार जो कुछ प्रतिकार मिल सकता हो उस प्रतिकारसे वह तनिक भी वंचित न हो, लेकिन हमें इस बातका कोई कारण नहीं दिखलाई देता कि जब वह मार खाकर और अपमानित होकर रोता गाता है तब सारे देशके लोग मिलकर खूब हो-हल्ला करें और केवल विदेशीको ही गाली गलौज दें। बेल साहबका व्यवहार प्रशंसनीय नहीं था। लेकिन मुहर्रिर और उसके पास रहनेवाले दूसरे आदमियोंका आचरण भी हेय था और खुलनाके बंगाली डिपुटी मजिस्ट्रेटके आचरणने तो हीनता और अन्यायको एकत्र मिलाकर सबसे अधिक बीभत्सपूर्ण कर दिया है।

थोड़े ही दिन हुए इसी प्रकारकी एक घटना पबनामें हुई थी। वहाँ म्युनिसिपैलिटीके घाटपरके एक ब्राह्मण कर्मचारीने पुलिसके साहबके पंखाकुलीसे बाजिब महसूल लेना चाहा था, इसपर पुलिसके साहबने उस ब्राह्मण कर्मचारीको अपने घर ले जाकर उसकी बहुत अधिक दुर्दशा की। बंगाली मजिस्ट्रेटने उस अपराधी अँगरेजको तो बिना किसी प्रकारका दंड दिए ही केवल सचेत करके छोड़ दिया परन्तु जब उस पंखाकुलीने उक्त ब्राह्मणके नाम दंगा करनेकी नालिश की तब ब्राह्मणको बिना जुरमाना किए न छोड़ा!

जिस कारणसे बंगाली मजिस्ट्रेटने प्रबल अँगरेज अपराधीको केवल सचेत करके छोड़ दिया और असमर्थ बंगाली अभियुक्तका जुर-

माना कर दिया वही कारण हम लोगोंकी जातिकी नसनसमें घुसा हुआ है। हम स्वयं ही अपने हाथों अपनी जातिके लोगोंका जो सम्मान करना नहीं जानते, हम लोग आशा करते हैं कि अँगरेज हम लोगोंका वही सम्मान आपसे आप करेंगे!

एक भारतवासी जब चुपचाप मार खाता है और दूसरा भारतवासी उस दृश्यको कुतूहलपूर्वक देखता है और जब बिना किसी प्रकारकी लज्जाके भारतवासी यह बात स्वीकृत करते हैं कि किसी भारतवासीके हाथसे इस अपमानके प्रतिकारकी आशा नहीं की जा सकती, तब यही समझना चाहिए कि अँगरेजोंके द्वारा हत और आहत होनेका मूल और प्रधान कारण स्वयं हम लोगोंके स्वभावमें ही है और इस कारणको सरकार किसी प्रकारके कानून अथवा विचारके द्वारा कभी दूर नहीं कर सकती।

हम लोग जब यह सुनते हैं कि किसी अँगरेजने एक भारतवासीका अपमान किया है तब चट आक्षेप करते हुए कह बैठते हैं कि वह अँगरेज किसी दूसरे अँगरेजके ही साथ कभी ऐसा व्यवहार न करता। खैर, यह मान लिया कि वह किसी दूसरे अँगरेजके साथ ऐसा व्यवहार न करता लेकिन अँगरेजके ऊपर क्रोध करनेकी अपेक्षा यदि हम स्वयं अपने ही ऊपर क्रोध करें तो इससे कुछ अधिक फल हो सकता है। जिन जिन कारणोंसे एक अँगरेज सहसा किसी दूसरे अँगरेजपर हाथ छोड़नेका साहस नहीं करता यदि वे ही सब कारण उसे हमपर हाथ छोड़ते समय नजर आने लगें तो हमारे साथ भी वैसा ही अनुकूल आचरण हो और हम लोगोंको इस प्रकार गिड़गिड़ाकर रोना गाना न पड़े।

पहले तो हमें अच्छी तरह यही देखना चाहिए कि एक भारतवासीके साथ दूसरा भारतवासी कैसा व्यवहार करता है। क्योंकि हम

लोगोंकी सारी शिक्षा इसीपर निर्भर है। क्या हम लोग अपने नौकरोंको नहीं मारते? क्या हम लोग अपने अधीनस्थ लोगोंके साथ उद्दंडताका व्यवहार नहीं करते और निम्नश्रेणीके लोगोंके प्रति सदा असम्मान प्रकट नहीं करते? हम लोगोंका समाज जगह जगह उच्च और नीचमें विभक्त है। जो व्यक्ति कुछ भी उच्च होता है वह नीच जातिवाले व्यक्तिसे अपरिमित अधीनताकी आशा करता है। यदि कोई निम्नवर्त्ती मनुष्य तनिक भी स्वतंत्रता प्रकट करता है तो ऊपरवालोंको उसका वह स्वतंत्रता प्रकट करना असह्य जान पड़ता है। भले आदमी तो यही समझते हैं कि देहाती और गँवार किसान मनुष्योंमें गिने जानेके योग्य ही नहीं हैं। यदि किसी सशक्त मनुष्यके सामने कोई अशक्त मनुष्य पूरी तरहसे दबकर न रहे तो उसे जबरदस्ती अच्छी तरह दबा देनेकी चेष्टा की जाती है। यह तो बराबर देखा ही जाता है कि चौकीदारके ऊपर कान्स्टेबुल और कान्स्टेबुलके ऊपर दारोगा केवल सरकारी काम ही नहीं लेते, वे केवल अपने उच्चतर पदका उचित सम्मान प्राप्त करके ही सन्तुष्ट नहीं होते बल्कि उसके साथ साथ अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंसे गुलामी करानेका भी दावा रखते हैं। चौकीदारके लिये कान्स्टेबुल एक यथेच्छाचारी राजा होता है और कान्स्टेबुलके लिये दारोगा भी वैसा ही अत्याचारी राजा होता है। इस प्रकार हमारे समाजमें सभी जगह छोटोंको बड़े लोग जिस प्रकार अपने नीचे दबाए रखना चाहते हैं उसकी कोई सीमा ही नहीं है। समाजमें जगह जगह प्रभुत्वका भार पड़ा हुआ है जिससे हमारी नसनसमें दासत्व और भय घुसा रहता है। जन्मसे हम लोगोंका जो नियत अभ्यास होता है वह हम लोगोंको अन्धवाध्यताके लिये पूरी तरहसे तैयार कर रखता है। उसीसे हम लोग अपने अधीनस्थ लोगोंके प्रति

अत्याचारी, अपनी बराबरीके लोगोंके प्रति ईर्ष्यान्वित और ऊपरवाले लोगोंके सामने बिके हुए गुलाम बनना सीखते हैं। हम लोगोंकी हर-दमकी उसी शिक्षामें हम लोगोंके सारे व्यक्तिगत और जातीय अपमानोंका मूल छिपा हुआ है। गुरुके प्रति भक्ति करके, प्रभुकी सेवा करके और अन्य मान्य लोगोंका यथोचित सम्मान करके भी मनुष्यमात्रमें जो एक मनुष्योचित आत्ममर्यादा रहनी चाहिए उसकी रक्षा की जा सकती है। लेकिन यदि हमारे गुरु, हमारे प्रभु, हमारे राजा या हमारे मान्य लोग उस आत्ममर्य्यादाका भी अपहरण कर लें तो उससे मनुष्यत्वमें बड़ा भारी हस्तक्षेप होता है। इन्हीं सब कारणोंसे हम लोग सचमुच ही मनुष्यत्वसे बिलकुल हीन हो गए हैं और इन्हीं कारणोंसे एक अँगरेज दूसरे अँगरेजके साथ जैसा व्यवहार करता है उस प्रकार वह हमारे साथ व्यवहार नहीं करता।

घर और समाजकी शिक्षासे जब हम उस मनुष्यत्वका उपार्जन कर सकेंगे तभी अँगरेज हम लोगोंके प्रति श्रद्धा करनेको बाध्य होंगे और हमारा अपमान करनेका साहस न करेंगे। अँगरेज सरकारसे हम लोग बहुत कुछ आशा कर सकते हैं लेकिन स्वाभाविक नियमको बदलना उसके लिये भी सम्भव नहीं है। और संसारका यह एक स्वाभाविक नियम है कि हीनताके प्रति आघात और अवमानना होती ही है।

लेकिन बहू ठहरी पराए घरकी लड़की। यदि न्यायपूर्वक भी कोई उसपर हाथ छोड़ना चाहे तो सम्भव है कि वह उसे न सहे और फिर न्याय-विचारका काम एक दमसे बन्द भी नहीं किया जा सकता। यह बात विज्ञानसम्मत है कि जहाँ बाधा बहुत ही कम होती है वहाँ यदि शक्तिका प्रयोग किया जाय तो शीघ्र ही फल प्राप्त होता है। इसलिये यदि हिन्दू मुसलमानोंके झगड़ोंमें शान्तप्रकृति, एकताके बन्धनसे रहित और कानूनी बेकानूनी सभी बातें चुपचाप सहनेवाले हिन्दुओंको दबा दिया जाय तो सहजमें ही मीमांसा हो जाती है। हम यह नहीं कहते कि गवर्नमेन्टकी पालिसी ही यही है। लेकिन इतना अवश्य है कि कार्य्यविधि स्वभावतः और यहाँतक कि अज्ञानतः भी इसी पथका अवलम्बन कर सकती है। यह बात ठीक उसी प्रकार हो सकती है जिस प्रकार नदीका स्रोत कड़ी मिट्टीको छोड़कर आपसे आप ही मुलायम मिट्टीको काटता हुआ चला जाता है।

इस लिये, चाहे गवर्नमेन्टकी हजार दोहाई दी जाय लेकिन हम इस बातपर विश्वास नहीं करते कि सरकार इसका कुछ प्रतिकार कर सकती है। हम लोग कांग्रेसमें सम्मिलित होते हैं, विलायतमें आन्दोलन करते हैं, अखबारोंमें प्रबन्ध लिखते हैं, भारतवर्षके बड़ेसे लेकर छोटे सभी अँगरेज कर्मचारियोंके कामकी स्वाधीनतापूर्वक समालोचना करते हैं, बहुतसे अवसरोंपर उन्हें अपने पदसे हटा देनेमें कृतकार्य्य होते हैं और इंग्लैण्डनिवासी निष्पक्ष अँगरेजोंकी सहायता लेकर भारतीय शासकोंके विरुद्ध बहुतसे राजविधानोंका संशोधन करानेमें भी समर्थ होते हैं। इन सब व्यवहारोंसे अँगरेज लोग इतना अधिक जल गए हैं कि भारत-राजतंत्रके बड़े बड़े पहाड़ोंकी चोटियोंसे भी राजनीतिसम्मत मौनको फाड़कर बीच बीचमें आगकी लपटें निकलने लगती

हैं। दूसरी ओर मुसलमान लोग राजभक्तिके मारे अवनतप्राय होकर कांग्रेसके उद्देश्यमार्गमें बाधास्वरूप खड़े हो गए हैं। इन्हीं सब कारणोंसे अँगरेजोंके मनमें एक प्रकारका विकार हो गया है—सरकारका इसमें कोई हाथ नहीं है।

केवल इतना ही नहीं है बल्कि अँगरेजोंके मनमें कांग्रेसकी अपेक्षा गोरक्षिणी सभाओंने और भी अधिक खलबली डाल दी थी। वे लोग जानते हैं कि इतिहासके प्रारम्भकालसे ही जो हिन्दू जाति आत्मरक्षाके लिये कभी एकत्र नहीं हो सकती वही जाति गोरक्षाके लिये तुरन्त एकत्र हो सकती है। इसलिये, जब इसी गोरक्षाके कारण हिन्दुओं और मुसलमानोंके विरोधका आरम्भ हुआ तब स्वभावतः ही मुसलमानोंके साथ अँगरेजोंकी सहानुभूति बढ़ गई थी। उस समय अविचलित चित्त और निष्पक्ष भावसे इस बातका विचार करनेकी शक्ति बहुत ही थोड़े अँगरेजोंमें थी कि इस समय कौन पक्ष अधिक अपराधी है अथवा दोनों ही पक्ष थोड़े बहुत अपराधी हैं या नहीं। उस समय वे डरते हुए सबसे अधिक इसी बातका विचार किया करते थे कि यह राजनीतिक संकट किस प्रकार दूर किया जा सकता है। हमने साधनाके तीसरे खंडमें 'अँगरेजोंका आतंक' नामक प्रबन्धमें सन्थालोंके दमनका उदाहरण देकर दिखलाया है कि जब आदमी डर जाता है तब उसमें सुविचार करनेका धैर्य्य नहीं रह जाता और जो लोग जानबूझकर अथवा बिना जानेबूझे डरका कारण होते हैं उन लोगोंके प्रति मनमें एक निष्ठुर हिंस्रभाव उत्पन्न हो जाता है। इसी लिये, गवर्नमेन्ट नामक यंत्र चाहे जितना निरपेक्ष रहे लेकिन फिर भी, चाहे यह बात बार बार अस्वीकृत कर दी जाय, इस बातके लक्षण स्पष्ट रूपसे पहले भी दिखलाई देते थे और अब भी दिखलाई देते हैं कि गवर्नमेन्टके

छोटे बड़े सभी यंत्री आदिसे अन्त तक बिलकुल घबरा गए थे। और जब साधारण भारतीय अँगरेजोंके मनमें तरह तरहके स्वाभाविक कारणोंसे एक बार इस प्रकारका विकार उत्पन्न हो गया है, तब उसका जो फल है वह बराबर फलता ही रहेगा। राजा कैन्यूट जिस प्रकार समुद्रकी तरंगोंको रोक नहीं सका था उसी प्रकार गवर्नमेन्ट भी इस स्वाभाविक नियममें बाधा नहीं दे सकती।

प्रश्न हो सकता है कि तब फिर क्यों व्यर्थ ही यह आन्दोलन किया जाता है अथवा हमारे इस प्रबन्ध लिखनेकी ही क्या आवश्यकता थी? हम यह बात एक बार नहीं हजार बार मानते हैं कि सकरुण अथवा साभिमान स्वरमें गवर्नमेन्टके सामने निवेदन या शिकायत करनेके लिये प्रबन्ध लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हमारा यह प्रबन्ध केवल अपने जातिभाइयोंके लिये है। हम लोगोंपर जो अन्याय होता है अथवा हम लोगोंके साथ जो अविचार होता है उसके प्रतिकारका सामर्थ्य स्वयं हम लोगोंको छोड़कर और किसीमें नहीं है।

कैन्यूटने समुद्रकी तरंगोंको जिस स्थानपर रुकनेके लिये कहा था समुद्रकी तरंगें उस स्थानपर नहीं रुकीं—उन्होंने जड़ शक्तिके नियमानुसार चलकर ठीक स्थानपर आघात किया था। कैन्यूट मुँहसे कहकर अथवा मंत्रोंका उच्चारण करके उन तरंगोंको नहीं रोक सकता था लेकिन बाँध बाँधकर उन्हें अवश्य रोक सकता था। स्वाभाविक नियमके अनुसार, यदि हम आघात-परम्पराको आधे रास्तेमें ही रोकना चाहें तो, हम लोगोंको भी बाँध बाँधना पड़ेगा, सब लोगोंको मिलकर एक होना पड़ेगा, सबको समहृदय होकर समवेदनाका अनुभव करना पड़ेगा।

हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि हम लोग दल बाँधकर विप्लव करें—और फिर हम लोगोंमें विप्लव करनेकी शक्ति भी नहीं है। लेकिन दल बाँधनेपर जो एक बृहत्त्व और बल आ जाता है उसपर लोग बिना श्रद्धा किए नहीं रह सकते। और जबतक कोई व्यक्ति या समाज अपनी ओर श्रद्धा आकृष्ट न कर सके तब तक उसके लिये सुविचार आकृष्ट करना बहुत ही कठिन होता है।

लेकिन बालूका बाँध क्योंकर बाँधा जा सकता है? जो लोग अनेक बार मारे पीटे जा चुके हैं फिर भी जिन्होंने कभी आजतक एका करना सीखा ही नहीं, जिन लोगोंके समाजमें फूटके हजारों विष-बीज छिपे हुए हैं वे लोग कैसे एक किए जा सकते हैं? आजकल उत्तरसे लेकर दक्षिणतक और पूर्वसे लेकर पश्चिमतक सारी हिन्दू जातिका हृदय दिन पर दिन अलक्षित भावसे केवल इसी विश्वासके कारण ही परस्पर निकट खिंचता आ रहा है कि अँगरेज लोग हम लोगोंके हृदयकी वेदनाका अनुभव नहीं कर सकते और वे औषधोंके द्वारा हमारी चिकित्सा न करके उलटे हमारे हृदयपर कड़ी चोट पहुँचाते और हमारे हृदयकी व्यथाको चौगुना बढ़ानेके लिये उद्योग करते हैं। लेकिन केवल इतनेसे ही कुछ नहीं हो सकता। हम लोगोंकी जाति अब भी हमारे जातिभाइयोंके लिए ध्रुव आश्रयभूमि नहीं बन पाई है। इसीलिये हम लोगोंको बाहरकी आँधीका उतना डर नहीं है जितना कि स्वयं अपने घरकी बालूकी दीवारका भय है। तेज बहनेवाली नदीके बीचके प्रवाहकी अपेक्षा उसके किनारेकी शिथिल बन्धन और खिसलनेवाली जमीनको बचाकर चलना होता है।

हम जानते हैं कि बहुत दिनों तक पराधीन रहनेके कारण हम लोगोंका जातीय मनुष्यत्व और साहस पिसकर चूर चूर हो गया है।

एक दिन हमने सुना कि अपराधीको अच्छी तरह समझ-बूझकर पकड़नेमें असमर्थ होकर हमारी क्रुद्ध सरकारने गवाह, सबूत, विचार, विवेचना आदिके लिये विलम्ब न करके अचानक सारे पूना शहरकी छातीपर राजदण्डका पत्थर रख दिया। हमने सोचा कि पूना बड़ा भयंकर शहर है! भीतर ही भीतर न जाने उसने कौनसा बड़ा भारी उपद्रव डाला है!

लेकिन आजतक उस भारी उपद्रवका किसीको कुछ भी पता न लगा।

हम चुपचाप बैठे हुए अभी यही सोच रहे थे कि यह बात सच-मुच हुई है या हम स्वप्न देख रहे हैं कि इतनेमें तारसे खबर आई कि राजप्रासादके गुप्त शिखरसे एक अज्ञात अपरिचित और बीभत्स कानून बिजलीकी तरह आ गिरा और नाटू भाइयोंको देखते देखते न जाने कहाँ उड़ा ले गया। देखते देखते सारे बम्बई प्रदेशके ऊपर घना काला बादल छा गया और जबरदस्त शासनकी गड़गड़ाहट, वज्रपात और शिलावृष्टिकी नौबत देखकर हमने सोचा कि यह तो नहीं मालूम कि अन्दर ही अन्दर वहाँ क्या हो रहा है लेकिन इतना बहुत अच्छी तरह दिखाई दे रहा है कि बात साधारण नहीं है! मराठे लोग बहुत भयंकर हैं!

एक ओर पुराने कानूनके सिक्कड़का मोरचा साफ हुआ और दूसरी ओर राजकीय कारखानेमें नए सिक्कड़ बनानेके लिये भीषण हथौड़ेका शब्द हो रहा है! इस शब्दसे सारा भारत काँप उठा है! लोगोंमें भयंकर धूम मच गई है! हम लोग बड़े ही भयंकर हैं!

अबतक हम लोग इस विपुला पृथ्वीको अचला समझा करते थे क्योंकि इस प्रबला पृथ्वीके ऊपर हम लोग जितने निर्भर हैं और उसके

प्रति हमने जितने उपद्रव किए हैं उन सबको उसने अपनी प्रकाण्ड शक्तिसे चुपचाप और अनायास ही सह लिया है। किन्तु एक दिन नई वर्षाके दुर्योगमें मेघावृत्त दोपहरको हम लोगोंकी वही चिर-निर्भर भूमि अचानक न जाने किस गूढ़ आशंकासे काँपने लगी। हमने देखा कि उसकी उस क्षण भरकी चंचलताके कारण हम लोगोंके बहुत दिनोंके प्रिय और पुराने वासस्थान मिट्टीमें मिल गए।

यदि सरकारकी अचला नीति भी अचानक साधारण अथवा अनिर्देश्य आतंकसे विचलित और विदीर्ण होकर हम लोगोंको खानेके लिये तैयार हो जाय, तो उसकी शक्ति और नीतिकी दृढताके सम्बन्धमें हम लोगोंका बहुत दिनोंसे जो विश्वास चला आता है सहसा उस विश्वासपर बड़ा भारी धक्का लगता है। उस धक्केसे प्रजाके मनमें भयका संचार होना सम्भव है लेकिन उसके साथ ही यह बात भी बहुत स्वाभाविक है कि सरकारको स्वयं अपने लिये भी अचानक बहुत कुछ सोच विचार करना पड़े। यह प्रश्न सहसा आप ही आप मनमें उठता है कि हम न जाने क्या हैं!

इससे हम लोगोंकी थोड़ी बहुत तसल्ली होती है। क्योंकि जो जाति पूरी तरहसे निस्तेज और निःसत्व हो गई हो, उसके प्रति बलका प्रयोग करना जिस प्रकार अनावश्यक है उसी प्रकार उसके प्रति श्रद्धा करना भी असम्भव है। जब हम लोग यह देखते हैं कि हमें दमन करनेके लिये विशेष प्रयत्न हो रहा है तब न्याय और अन्याय, विचार और अविचारका तर्क दूर हो जाता है और हमारे मनमें स्वभावतः यह बात आती है कि शायद हम लोगोंमें किसी शक्तिकी संभावना है और केवल मूढ़ताके कारण हम सब अवसरोंपर उस शक्तिको काममें नहीं ला सकते। ऐसी दशामें जब कि सरकार चारों तरफ तोपें लगा

रही है तो यह बात निश्चय है कि हम लोग मच्छड़ नहीं हैं—कमसे कम मरे हुए मच्छड़ नहीं हैं !

हमारी जातिमें यदि कुछ प्राण अथवा कुछ शक्तिके संचारकी संभावना हो तो हमारे लिये यह बहुत ही आनन्दकी बात है। इस बातको अस्वीकृत करना ऐसी स्पष्ट कपटता है कि पालिसीके रूपमें तो वह अनावश्यक और प्रवंचनाके रूपमें बिलकुल व्यर्थ है। इसलिये जब हम यह देखते हैं कि सरकार हम लोगोंकी उस शक्तिको स्वीकृत करती है तो हमारे निराश चित्तमें थोड़ेसे गर्वका संचार हुए बिना नहीं रह सकता ! लेकिन दुःखका विषय यह है कि यह गर्व हम लोगोंके लिये सांघातिक है। जिस प्रकार सीपमें मोतीका होना सीपके लिये बुरा होता है उसी तरह हम लोगोंमें इस गर्वका होना भी बुरा है। कोई चालाक गोताखोर हम लोगोंके पेटमें छुरी भोंककर यह गर्व निकाल लेगा और इसे अपने राजमुकुटमें लगा लेगा। अँगरेज अपने आदर्शको देखते हुए हम लोगोंका जो अनुचित सम्मान करते हैं वह सम्मान हम लोगोंके लिये परिहासके साथ ही साथ मृत्यु भी हो सकता है। गवर्नमेन्ट हम लोगोंमें जिस बलके होनेका सन्देह करके हम लोगोंके साथ बल प्रयोग करती है वह बल यदि हम लोगोंमें न हुआ तो उसके भारी दण्डसे हम लोग नष्ट हो जायँगे और यदि वह बल हम लोगोंमें सचमुच हुआ तो उस दण्डकी मारसे हमारा वह बल बराबर दृढ़ और अन्दर ही अन्दर प्रबल होता जायगा।

हम लोग तो अपने आपको जानते हैं, लेकिन अँगरेज हम लोगोंको नहीं जानते। उनके इस न जाननेके सैकड़ों कारण हैं जिनका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है। साफ़ बात यही है कि वे हम लोगोंको नहीं जानते। हम लोग पूर्वके रहनेवाले हैं और वे पश्चि-

मके। हम लोगोंमें किस बातका क्या परिणाम होता है, हमें किस जगह चोट लगनेसे कहाँ पीड़ा होती है, इस बातको वे लोग अच्छी तरह नहीं समझ सकते। इसीलिये उन लोगोंको भय है। हम लोगोंमें भयंकरताका और कोई लक्षण नहीं है,—केवल एक लक्षण है और वह यह कि हम लोग अज्ञात हैं। हम लोग स्तन्यपायी उद्भिदभोजी जीव हैं, हम लोग शान्त सहनशील और उदासीन हैं; लेकिन फिर भी हम लोगोंका विश्वास नहीं करना चाहिए। क्योंकि हम लोग पूर्वके रहनेवाले और दुर्ज्ञेय हैं।

यदि सचमुच यही बात हो तो हम अपने शासकोंसे कहते हैं कि आप लोग क्यों हम लोगोंको और भी अधिक अज्ञेय करते जा रहे हैं? यदि आप रस्सीको साँप समझ रहे हों तो क्यों चटपट घरका दीआ बुझाकर अपना भय और भी बढ़ा रहे हैं? जिस एक मात्र उपायसे हम लोग आत्मप्रकाश कर सकते हैं, आपको अपना परिचय दे सकते हैं, उस उपायको रोकनेसे आपको क्या लाभ होगा?

गदरसे पहले हाथों हाथ जो रोटी वितरण की गई थी, उसमें एक अक्षर भी नहीं लिखा था; फिर भी उससे गदर हो गया था। तब ऐसे निर्वाक निरक्षर समाचारपत्र ही क्या वास्तवमें भयंकर नहीं हैं? साँपकी गति बिलकुल गुप्त होती है और उसके काटनेमें कोई शब्द नहीं होता, लेकिन क्या केवल इसीलिये साँप निदारुण नहीं होता? समाचारपत्र जितने ही अधिक और जितने ही अबाध होंगे स्वाभाविक नियमके अनुसार देश आत्मगोपन करनेमें उतना ही अधिक असमर्थ होगा। यदि कभी अमावस्याकी किसी गहरी अँधेरी रातमें हम लोगोंकी अबला भारतभूमि दुराशाके दुस्साहससे पागल होकर विप्लव-अभिसारकी यात्रा करे तो संभव है कि सिंहद्वारका कुत्ता

यदि समाचारपत्रोंकी स्वाधीनताका यह परदा उठा दिया जाय तो हम लोगोंकी पराधीनताका सारा कठिन कंकाल क्षण भरमें बाहर निकल पड़े। आजकलके कुछ जबरदस्त अँगरेज लेखक कहते हैं कि जो बात सत्य है उसका प्रकट हो जाना ही अच्छा है। लेकिन हम पूछते हैं कि क्या अँगरेजी शासनका यह कठिन और शुष्क पराधीनताका कंकाल मात्र ही सत्य है? और इसके ऊपर जीवनके लावण्यका जो परदा था और स्वाधीन गतिकी विचित्र लीलाकी जो मनोहर श्री दिखलाई गई थी क्या वही मिथ्या और माया थी? दो सौ वर्षके परिचयके उपरान्त क्या हम लोगोंके मानव-सम्बन्धका यही अवशेष है?

अत्युक्ति ।*

पृथ्वीके पूर्वकोणके लोग अर्थात् हम लोग अत्युक्तिका बहुत अधिक व्यवहार करते हैं। अपने पश्चिमीय गुरुओंसे हम लोगोंको इस सम्बन्धमें अकसर उल्टी सीधी बातें सुननी पड़ती हैं। जो लोग सात समुद्र-पारसे हम लोगोंके भलेके लिये उपदेश देने आते हैं, हम लोगोंको उचित है कि सिर झुकाकर चुपचाप उनकी बातें सुना करें। क्योंकि वे लोग हमारे जैसे अभागोंकी तरह केवल बातें करना ही नहीं जानते और साथ ही वे लोग यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि बातें किस तरह सुनी जाती हैं। और फिर हम लोगोंके दोनों कानोंपर भी उनका पूरा अधिकार है।

लेकिन हम लोगोंने डाँट-डपट और उपदेश तो बार बार सुना है और हम लोगोंके स्कूलोंमें पढ़ाए जानेवाले भूगोलके पृष्ठों और कन्वोकेशन (Convocation) से यह बात अच्छी तरह प्रतिध्वनित होती है कि हम लोग कितने अधम हैं। हम लोगोंका क्षीण उत्तर इन बातोंको दबा नहीं सकता; लेकिन फिर भी हम बिना बोले कैसे रह सकते हैं? अपने झुके हुए सिरको हम और कहाँतक झुकावेंगे?

सच बात तो यह है कि अत्युक्ति और अतिशयिता सभी जातियोंमें है। अपनी अत्युक्ति बहुत ही स्वाभाविक और दूसरोंकी अत्युक्ति

* जिस समय दिल्ली-दरबारकी तय्यारियाँ हो रही थीं, यह लेख उस समय लिखा गया था।

बहुत ही असंगत जान पड़ती है। जिस विषयमें हम लोगोंकी बात आपसे आप बहुत बढ़ चलती है उस विषयमें अँगरेज लोग बिलकुल चुप रहते हैं और जिस विषयमें अँगरेज लोग बहुत अधिक बका करते हैं उस विषयमें हम लोगोंके मुँहसे एक बात भी नहीं निकलती। हम लोग सोचते हैं कि अँगरेज लोग बातोंको बहुत अधिक बढ़ाते हैं और अँगरेज लोग सोचते हैं कि पूर्वीय लोगोंको परिमाणका ज्ञान नहीं है।

हमारे देशमें गृहस्थलोग अपने अतिथिसे कहा करते हैं कि—"सब कुछ आपका ही है—घर-बार सब आपका है।" यह अत्युक्ति है। यदि कोई अँगरेज स्वयं अपने रसोई-घरमें जाना चाहे तो वह अपनी रसोई बनानेवालीसे पूछता है—"क्या मैं इस कमरेमें आ सकता हूँ?" यह भी एक प्रकारकी अत्युक्ति ही है।

यदि स्त्री नमककी प्याली आगे खसका दे तो अँगरेज पति कहता है—"मैं धन्यवाद देता हूँ।" यह अत्युक्ति है। निमंत्रण देनेवालेके घरमें सब तरहकी चीजें खूब अच्छी तरह खा-पीकर इस देशका निमंत्रित कहता है—"बड़ा आनन्द हुआ, मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ।" अर्थात् मेरा सन्तोष ही तुम्हारे लिये पारितोषिक है। इसके उत्तरमें निमंत्रण देनेवाला कहता है—"आपकी इस कृपासे मैं कृतार्थ हो गया।" इसे भी अत्युक्ति कह सकते हैं।

हम लोगोंके देशमें स्त्री अपने पतिको जो पत्र लिखती है उसमें लिखा रहता है—"श्रीचरणेषु।" अँगरेजोंके लिये यह अत्युक्ति है। अँगरेज लोग अपने पत्रोंमें जिस-तिसको "प्रिय" लिखकर सम्बोधन करते हैं। अभ्यस्त न होनेके कारण हम लोगोंको यह बात अत्युक्ति जान पड़ती है।

इस प्रकारके और भी हजारों दृष्टान्त हैं। लेकिन ये सब बँधी हुई अत्युक्तियाँ हैं—पैतृक हैं। हम लोग अपने दैनिक व्यवहारमें नित्य नई नई अत्युक्तियोंकी रचना किया करते हैं। वस्तुतः प्राच्यजातिकी भर्त्सनाका यही कारण है।

ताली एक हाथसे नहीं बजती, इसी प्रकार बात भी दो आदमियोंके मिलनेसे होती है। जिस स्थानपर श्रोता और वक्ता दोनों एक दूसरेकी भाषा समझते हैं उस स्थानपर दोनोंके संयोगसे अत्युक्ति आपसे आप संशोधित हो जाती है। साहब जब चिट्ठीके अन्तमें हमें लिखते हैं Yours truly—सचमुच तुम्हारा—तब यदि हम उनके इस अत्यन्त घनिष्ट आत्मीयता दिखलानेवाले पदपर अच्छी तरह विचार करें तो हम समझते हैं कि वे सचमुच हमारे नहीं हैं। विशेषतः जब कि बड़े साहब अपने आपको हमारा बाध्यतम भृत्य बतलाते हैं तो हम अनायास ही उनकी इस बातमेंसे सोलह आने बाद करके ऊपरसे और भी सोलह आने काट ले सकते हैं, अर्थात् इसका बिलकुल ही उलटा अर्थ ले सकते हैं। ये सब बँधी हुई और दस्तूरकी अत्युक्तियाँ हैं। लेकिन प्रचलित भाषा-प्रयोगकी अत्युक्तियाँ भी अँगरेजीमें कोड़ियों भरी पड़ी हैं। Immensely, immeasurably, extremely, awfully, infinitely, absolutely, over so much, for the life of me, for the world, unbounded, endless आदि शब्द-प्रयोग यदि सभी स्थानोंपर अपने अपने यथार्थ भावोंमें लिए जायँ तो उनके सामने पूर्वीय अत्युक्तियाँ इस जन्ममें कभी सिर ही न उठा सकेंगी।

यह बात स्वीकृत करनी ही पड़ेगी कि बाहरी या ऊपरी विषयोंमें हम लोग बहुत ही शिथिल हैं। बाहरकी चीजको न तो हम लोग ठीक

तरहसे देखते हैं और न उसे उसके ठीक रूपमें ग्रहण ही करते हैं। प्रायः हम लोग बाहरके ९ को ६ और ६ को ९ कर दिया करते हैं। यद्यपि हम लोग अपनी इच्छासे ऐसा नहीं करते, लेकिन फिर भी ऐसे अवसरपर अज्ञानकृत पापका दूना दोष होता है—एक तो पाप और दूसरा ऊपरसे अज्ञान। इन्द्रियोंको इस प्रकार अलस और बुद्धिको इस प्रकार असावधान कर रखनेसे हम लोग अपनी इन दोनों बातोंको, जो इस संसारमें हम लोगोंका प्रधान आधार हैं, बिलकुल मिट्टी कर देते हैं। जो व्यक्ति वृत्तांतको बिलकुल अलग छोड़कर केवल कल्पना-की सहायतासे सिद्धान्त स्थिर करनेकी चेष्टा करता है वह अपने आपको ही धोखा देता है। जिन जिन विषयोंमें हम लोग अनजान रहते हैं उन्हीं उन्हीं विषयोंमें हम लोग धोखा खाते हैं। काना हिरन जिस तरफ अपनी कानी आँख रखकर आनन्दसे घास खा रहा था उसी तरफसे शिकारीका तीर आकर उसके कलेजेमें लगा। हम लोगोंकी फूटी हुई आँख थी इहलोककी तरफ, इसलिये उसी तरफसे हम लोगोंको यथेष्ट शिक्षा भी मिली। उसी तरफकी चोट खाकर हम लोग मरे! लेकिन क्या करें—"जाकर जौन स्वभाव छुटै नहिं जीसों।"

अपना दोष तो हमने मान लिया। अब हमें दूसरोंपर दोषारोपण करनेका अवसर मिलेगा। बहुतसे लोग इस प्रकार दूसरोंपर दोषारोपण करनेकी निन्दा करते हैं, हम भी उसकी निन्दा करते हैं। लेकिन जो लोग विचार करते हैं, दूसरे भी उनका विचार करनेके अधिकारी होते हैं। हम अपने इस अधिकारको नहीं छोड़ सकते। इससे हम यह आशा नहीं करते कि दूसरोंका कुछ उपकार होगा, लेकिन अपने अपमानके समय हमें जहाँसे जो कुछ आत्मप्रसाद मिल सकता हो, उसे हम नहीं छोड़ सकते।

यही देखते हैं कि कुली लोग बाहर बैठकर त्रस्त चित्तसे पंखेकी रस्सी खींच रहे हैं, साईस घोड़ेकी लगाम पकड़कर चँवरसे मक्खियाँ और मच्छड़ उड़ा रहे हैं और दग्ध भारतवर्षके तप्त सम्बन्धसे दूर होनेके लिये शासक लोग शिमलेके पहाड़की तरफ भाग रहे हैं। भारतवर्षमें अँगरेजी राज्यका विशाल शासन-कार्य बिलकुल ही आनन्दहीन और सौन्दर्य्यहीन है। उसका सारा मार्ग केवल दफतरों और अदालतोंकी ही ओर है, जनसमाजके हृदयकी ओर बिलकुल नहीं है। तो फिर अचानक इसके बीचमें यह बिलकुल बेजोड़ दिखनेवाला दरबार क्यों किया जाता है? सारी शासन-प्रणालीके साथ उसका किस जगहसे सम्बन्ध है? पेड़ों और लताओंमें फूल होता है, आफिसोंकी कड़ियों और धरनोंमें माधवी मंजरी नहीं लगती! यह तो मानों मरुभूमिमें मरीचिकाके समान है। यह छाया तापके निवारणके लिये नहीं है, इस जलसे प्यास नहीं बुझेगी।

प्राचीन कालके दरबारोंमें सम्राट् लोग केवल अपना प्रताप ही नहीं प्रकट किया करते थे। वे सब दरबार किसीके सामने ऊँचे स्वरसे कोई बात प्रमाणित करनेके लिये नहीं किए जाते थे, वे स्वाभाविक होते थे। वे सब उत्सव बादशाहों और नवाबोंकी उदारताके उद्वेलित प्रवाह-स्वरूप हुआ करते थे। उस प्रवाहमें दानशीलता होती थी। उससे प्रार्थियोंकी प्रार्थनाएँ पूरी होती थीं, उससे दीनोंका अभाव दूर होता था, उससे आशा और आनन्दका दूर दूर तक प्रसार होता था। अब जो दरबार होनेवाला है उसके कारण बतलाओ किसे पीड़ितको आश्वासन मिला है, कौन दरिद्र सुखस्वप्न देख रहा है? यदि उस दिन कोई दुराशाग्रस्त अभागा अपने हाथमें कोई प्रार्थनापत्र लेकर सम्राटके प्रतिनिधिके पास जाना चाहे तो क्या उसे पुलिसके हाथकी मार खाकर रोते हुए न लौटना पड़ेगा?

इसीलिये कहते हैं कि आगामी दिल्ली दरबार पाश्चात्य अत्युक्ति और वह भी झूठी वा दिखौआ अत्युक्ति है। इधर तो हिसाब किताब और दूकानदारी है और उधर बिना प्राच्य सम्राटोंकी नकल किए काम नहीं चलता। हम लोग देशव्यापी अनशनके दिनोंमें इस अमूलक दरबारका आडम्बर देखकर डर गए थे, इसीलिये हमारे शासकोंने हमें आश्वासन देते हुए कहा था कि इसमें व्यय बहुत अधिक नहीं होगा और जो कुछ होगा भी उसका प्रायः आधा वसूल कर लिया जा सकेगा। लेकिन जिन दिनोंमें बहुत समझ-बूझकर रुपया खर्च करना पड़ता है उन दिनोंमें भी बिना उत्सव किए काम नहीं चलता। जिन दिनों खजानेमें रुपया कम होता है उन दिनों यदि उत्सव करनेकी आवश्यकता हो तो अपना खर्च बचानेकी ओर दृष्टि रखकर दूसरोंके खर्चकी ओरसे उदासीन रहना पड़ता है। इसीलिये चाहे आगामी दिल्ली दरबारके समय सम्राटके प्रतिनिधि थोड़े ही खर्चमें काम चला लें, लेकिन फिर भी आडम्बरको बहुत बढ़ानेके लिये वे राजा महाराजाओंका अधिक खर्च करावेंगे ही। प्रत्येक राजा महाराजाको कुछ हाथी, कुछ घोड़े और कुछ आदमी अपने साथ लाने ही पड़ेंगे। सुनते हैं कि इस सम्बन्धमें कुछ आज्ञा भी निकली है। उन्हीं सब राजा महाराजाओंके हाथी-घोड़ों और लाव-लश्करसे, यथासंभव थोड़ा खर्च करनेमें चतुर सम्राटके प्रतिनिधि जैसे तैसे इस बड़े कामको चला ले जायँगे। इससे चतुरता और प्रतापका परिचय मिलता है। लेकिन प्राच्य सम्प्रदायके अनुसार जो उदारता और वदान्यता राजकीय उत्सवका प्राण समझी जाती है वह इसमें नहीं है। एक आँख रुपयेकी थैलीकी ओर और दूसरी आँख पुराने बादशाहोंके अनुकरण-कार्यकी ओर रखनेसे यह काम नहीं चल सकता। जो व्यक्ति यह काम स्वभावतः ही

कर सकता हो वही कर सकता है और उसीको यह शोभा भी देता है।

इसी बीचमें हमारे देशके एक छोटेसे राजाने सम्राटके अभिषेकके उपलक्ष्यमें अपनी प्रजाको कई हजार रुपयोंकी मालगुजारी माफ कर दी है। हमने तो इससे यही समझा कि इससे भारतवर्षीय इन राजा साहबने अँगरेज शासकोंको इस बातकी शिक्षा दी है कि भारतवर्षमें राजकीय उत्सव किस प्रकार किया जाता है। लेकिन जो लोग नकल करते हैं वे सच्ची शिक्षा ग्रहण नहीं करते, वे लोग केवल बाहरी आडम्बर ही कर सकते हैं। तपा हुआ बालू सूर्य्यके समान ताप तो देता है परन्तु प्रकाश नहीं देता। इसीलिये हमारे देशमें तपे हुए बालूके तापको असह्य अतिशयताके उदाहरणमें लेते हैं। आगामी दिल्ली दरबार भी इसी प्रकार अपना प्रताप तो फैलावेगा लेकिन लोगोंको आशा और आनन्द न देगा। केवल दम्भ-प्रकाश सम्राटको भी शोभा नहीं देता। उदारताके द्वारा, दया-दाक्षिण्यके द्वारा दुस्सह दम्भको छिपा रखना ही यथार्थ राजोचित कार्य है। आगामी दिल्ली दरबारमें भारतवर्ष अपने सारे राजा महाराजाओंको लेकर वर्त्तमान सम्राट्के प्रतिनिधिके सामने अधीनता स्वीकार करने जायगा। लेकिन सम्राट् उसे कौनसा सम्मान, कौनसी सम्पत्ति, कौनसा अधिकार देंगे? कुछ भी नहीं। यह बात भी नहीं है कि इससे केवल भारतवर्षकी अवनतिकी ही स्वीकृति हो। इस प्रकारके कोरे आकस्मिक दरबारकी भारी कृपणतासे प्राच्य जातिके सामने अँगरेजोंकी राजमहिमा भी बिना घटे नहीं रह सकती।

दरबारके सब काम अँगरेजी प्रथाके अनुसार सम्पन्न होंगे। चाहे वह प्रथा हमारे यहाँकी प्रथासे मिलती जुलती न हो, लेकिन फिर भी हम लोग

इस सम्बन्धमें चुप रहनेके लिये वाध्य हैं। हमारे देशमें पहले बराबरीके किसी राजाके आगमनके समय अथवा राजकीय शुभ कार्योंके समय जो सब उत्सव और आमोद आदि होते थे उनमें सारा व्यय राजा अपने पास-से ही देता था। जन्मतिथि आदि अनेक प्रकारके अवसरोंपर प्रजा सदा राजाका अनुग्रह प्राप्त करती थी। लेकिन आजकल सब बातें इसके बिल-कुल विपरीत हैं। राजाके यहाँ चाहे शादी हो चाहे गमी, उसका लाभ हो चाहे हानि, लेकिन उसकी ओरसे सदा प्रजाके सामने चन्देका खाता ही रखा जाता है और राजा तथा रायबहादुर आदि खिताबोंकी राजकीय नीलामकी दूकान जम जाती है। अकबर और शाहजहाँ आदि बड़े बड़े बादशाह अपनी कीर्त्ति स्वयं अपने व्ययसे ही खड़ी कर गए हैं। लेकिन आजकलके कर्मचारी लोग तरह तरहके छलों और तरह तरहके कौशलोंसे प्रजासे ही अपने बड़े बड़े कीर्त्तिस्तम्भोंका खर्च वसूल कर लेते हैं। सम्राटके प्रतिनिधिने सूर्यवंशीय क्षत्रिय राजाओंको सलाम करनेके लिये अपने पास बुलाया है, पर यह तो नहीं मालूम होता कि सम्राटके इन प्रतिनिधि महाशयने अपने दानसे कौनसा बड़ा भारी तालाब खोदवाया है, कौनसी धर्मशाला बनवाई है और देशके लिये शिक्षा और शिल्पचर्चाको कौनसा आश्रय दिया है? प्राचीन-कालके बादशाह, नवाब और राजकर्मचारीगण भी इस प्रकारके मंगल-कार्योंके द्वारा प्रजाके हृदयके साथ सम्बन्ध रखते थे। आजकल राज-कर्मचारियोंका तो अभाव नहीं है और उनके बड़े बड़े वेतन भी संसा-रमें विख्यात हैं; परन्तु ये लोग इस देशमें दान और सत्कर्म करके अपने अस्तित्वका कोई चिह्न नहीं छोड़ जाते। ये लोग विलायती दूका-नोंसे ही अपना सारा सामान खरीदते हैं, अपने विलायती संगी-साथियोंके साथ ही आमोद-प्रमोद करते हैं और विलायतके किसी कोनेमें बैठकर अन्तिम कालतक अपनी पेन्शिनका भोग किया करते हैं।

वर्णों, भिन्न भिन्न चित्रों और भिन्न भिन्न अक्षरोंमें देश-विदेशोंमें किस प्रकार अपनी घोषणा करती हैं। अब हम लोग भी निर्लज्ज होकर और उन्हींमें मिलकर इस प्रकारकी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं! विलायतमें जिस प्रकार राजनीतिक क्षेत्रमें झूठे बजट तैयार किए जाते हैं, प्रश्नोंके जिस प्रकार चतुराईसे गढ़े हुए और दूसरोंको धोखेमें डालनेवाले उत्तर दिए जाते हैं और अभियोग चलाकर एक पक्षपर दूसरे पक्षवाले जो सब दोषारोपण करते हैं, वे सब यदि मिथ्या हों तब तो लज्जाका विषय है और यदि वे मिथ्या न हों तो इसमें सन्देह नहीं कि वे शंकाजनक अवश्य हैं। वहाँकी पार्लिमेन्टसंगत भाषामें और कभी कभी उसका उल्लंघन करके भी बड़े बड़े लोगोंको झूठा, धोखेबाज और सच्ची बातको छिपानेवाला कह दिया जाता है। या तो इस निन्दावादको अत्युक्ति-परायणता कहना होगा और नहीं तो यह कहना पड़ेगा कि इंग्लैण्डकी राजनीति झूठसे बिलकुल जीर्ण है।

जो हो, इस आलोचनासे यह बात मनमें आती है कि अत्युक्तिको स्पष्ट अत्युक्तिके रूपमें रखना ही अच्छा है। उसे कौशलसे काट-छाँट-कर वास्तवके दलमें मिलानेकी चेष्टा करना अच्छा नहीं है—उसमें बहुत अधिक विपत्तियाँ हैं।

इम्पीरियलिज्म।

(साम्राज्यवाद।)

विलायतमें आजकल लोगोंको इम्पीरियलिज्म या साम्राज्यवादका एक नशासा हो गया है। उस देशमें आजकल बहुतसे लोगोंको यही धुन सवार है कि इंग्लैण्डके समस्त अधीन देशों और उपनिवेशों आदिको मिलाकर एक कर दिया जाय और अँगरेजी साम्राज्यको एक बड़ा उपसर्ग बना डाला जाय। विश्वामित्रने एक नए जगतकी सृष्टि करनेका उद्योग किया था। बाइबिलमें एक राजाका वर्णन है जिसने स्वर्गकी प्रतिस्पर्धा करके एक बहुत ऊँचा स्तम्भ खड़ा करनेकी चेष्टा की थी। स्वयं रावणके सम्बन्धमें भी इसी प्रकारकी एक जनश्रुति प्रचलित है।

इस प्रकारके बहुत बड़े बड़े काम करनेके विचार इस संसारमें समय समयपर बहुतसे लोगोंके मनमें आए हैं। ऐसे ऐसे काम कभी पूरे नहीं उतरते। पर हाँ, वे नष्ट होनेसे पहले संसारमें कुछ न कुछ अमंगल या अनर्थ अवश्य कर जाते हैं।

इस विचारने लार्ड कर्जनके मनमें भी जो उथलपुथल मचाई है उसका आभास उनकी हालकी एक वक्तृतासे मिलता है। हम देखते हैं कि हमारे देशके कुछ समाचारपत्र कभी कभी इस विषयमें थोड़ा बहुत उत्साह प्रकट किया करते हैं। वे कहा करते हैं कि —— ——

बात है; भारतवर्षको ब्रिटिश साम्राज्यमें एकात्म होनेका अधिकार दीजिए।

केवल बातोंके भरोंसे ही तो कोई अधिकार मिल नहीं जाता—यहाँ तक कि यदि कागजपर पक्की लिखा पढ़ी हो जाय तौ भी दुर्बल मनुष्योंको अपने स्वत्वोंका उद्धार करना बहुत कठिन होता है। इसी-लिये जब हम देखते हैं कि जो लोग हमारे अधिकारी या शासक हैं वे जब इम्पीरियल-वायुसे ग्रस्त हैं तब हम नहीं समझते कि इससे हमारा कल्याण होगा।

पाठक कह सकते हैं कि तुम व्यर्थ इतना भय क्यों करते हो। जिसके हाथमें शक्ति है वह चाहे इम्पीरियलिज्मका आन्दोलन करे और चाहे न करे, पर यदि वह तुम्हारा अनिष्ट करना चाहे तो सहजमें ही कर सकता है।

लेकिन हम कहते हैं कि वह सहजमें हमारा अनिष्ट नहीं कर सकता। हजार हो, पर फिर भी दया और धर्मको एकदमसे छोड़ देना बहुत कठिन है। लेज्जा भी कोई चीज है। लेकिन जब कोई व्यक्ति किसी बड़े सिद्धान्तकी आड़ पा जाता है तब उसके लिये निष्ठुरता और अन्याय करना सहज हो जाता है।

बहुतसे लोगोंको योंही किसी जन्तुको कष्ट पहुँचानेमें बहुत दुःख होता है। लेकिन जब उसी कष्ट देनेका नाम 'शिकार' रख दिया जाता है तब वे ही लोग बड़े आनन्दसे बेचारे हत और आहत पक्षि-योंकी सूची बढ़ानेमें अपना गौरव समझते हैं। यदि कोई मनुष्य बिना कारण या उपलक्ष्यके किसी पक्षीके डैने तोड़ दे तो अवश्य ही वह शिकारीसे बढ़कर निष्ठुर माना जायगा; लेकिन उसके निष्ठुर माने जानेसे पक्षीको किसी प्रकारका विशेष सन्तोष नहीं हो सकता।

बल्कि असहाय पक्षियोंके लिये स्वभावतः निष्ठुर व्यक्तिकी अपेक्षा शिकारियोंका दल बहुत अधिक कष्टदायक है।

जो लोग इम्पीरियलिज्मके ध्यानमें मस्त हैं इसमें सन्देह नहीं कि वे लोग किसी दुर्बलके स्वतंत्र अस्तित्व और अधिकारके सम्बन्धमें बिना कातर हुए निर्मोही हो सकते हैं। संसारमें सभी ओर इस बातके दृष्टान्त देखनेमें आते हैं।

यह बात सभी लोग जानते हैं कि फिनलैण्ड और पोलैण्डको अपने विशाल कलेवरमें बिलकुल अज्ञात रीतिसे अपने आपमें पूरी तरहसे मिलानेके लिये रूस कहाँतक जोर लगा रहा है।* यदि रूस अपने मनमें यह बात न समझता कि इम्पीरियलिज्म नामक एक बहुत बड़े स्वार्थके लिये अपने अधीनस्थ देशोंकी स्वाभाविक विषमताएँ बलपूर्वक दूर कर देना ही आवश्यक है तो उसके लिये इतना अधिक जोर लगाना कदापि सम्भव न होता। रूस अपने इसी स्वार्थको पोलैण्ड और फिनलैण्डका भी स्वार्थ समझता है।

लार्ड कर्जन भी इसी प्रकार कह रहे हैं कि अपनी जातीयताकी बात भुलाकर साम्राज्यके स्वार्थको ही अपना स्वार्थ बना डालो।

यदि यह बात किसी शक्तिमानसे कही जाय तो उसके लिये इससे डरनेका कोई कारण नहीं है; क्योंकि वह केवल बातोंसे नहीं भूलेगा। उसके लिये इस बातकी आवश्यकता है कि वास्तवमें उस बातसे उसका स्वार्थ अच्छी तरह सिद्ध हो। अर्थात् यदि ऐसे अवसरपर कोई उसे बलपूर्वक अपने दलमें मिलाना चाहेगा तो जबतक वह अपने स्वार्थको भी यथेष्ट परिमाणमें विसर्जित न करेगा तबतक उसे अपने

* गत महायुद्धके कारण यह स्थिति बिलकुल लुप्त हो गई है।—अनुवादक।

अनुकूल न कर सकेगा। अतएव उस स्थानपर बिना बहुत कुछ शहद गिराए (लालच दिए) और तेल खर्च किए काम नहीं चलता।

इंग्लैण्डके उपनिवेश आदि इस बातके दृष्टान्त हैं। अँगरेज बराबर उनके कानमें यही मंत्र फूँकते आ रहे हैं—"यदेतत् हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव।" लेकिन वे केवल मंत्रमें भूलनेवाले नहीं हैं—वे अपने सौदेके रुपए गिन लेते हैं।

लेकिन हमारे लिये सौदेके रुपयोंकी बात तो दूर रही, दुर्भाग्यवश मंत्रकी भी आवश्यकता नहीं होती।

जब हम लोगोंका समय आता है तब इसी बातका विचार होता है कि विदेशियोंके साथ भेदबुद्धि रखना जातीयताके लिये तो आवश्यक है परन्तु वह इम्पीरियलिज्मके लिये प्रतिकूल है, इसलिये उस भेदबुद्धिके जो कारण हैं उन सबको दूर कर देना ही कर्त्तव्य है।

लेकिन जब ये कारण दूर किए जायँगे तब उस एकताको भी किसी प्रकार जमने या बढ़ने न देना ही ठीक होगा जो इस समय देशके भिन्न भिन्न भागोंमें होने लगी है। वे बिलकुल खण्ड खण्ड और चूर्ण अवस्थामें ही रहें, तभी उन्हें हजम करना सहज होगा।

भारतवर्ष सरीखे इतने बड़े देशको मिलाकर एक कर देनेमें बड़ा भारी गौरव है। प्रयत्न करके इसे विच्छिन्न और अलग अलग रखना अँगरेज सरीखी अभिमानी जातिके लिये लज्जाकी बात है।

लेकिन इम्पीरियलिज्मके मंत्रसे यह लज्जा दूर हो जाती है। ऐसी दशामें जब कि साम्राज्यमें मिलकर एक हो जाना ही भारतवर्षके लिये परमार्थ-लाभ है तब उस महान् उद्देश्यसे इस देशको चक्कीमें पीस कर विश्लिष्ट या खण्ड खण्ड कर डालना ही 'ह्यूमैनिटी' (humanity= मनुष्यत्व) है।

राजपुत्रने भी जान पड़ता है, सुप्त राजभक्तिको जगानेके लिये ही यह यात्राका कष्ट स्वीकार किया था, परन्तु क्या उन्हें 'सोनेकी छड़ी' प्राप्त हुई?

अनेक घटनाओंसे यह बात स्पष्ट दिखलाई देती है कि हमारे राज-पुरुष सोनेकी छड़ीकी अपेक्षा लोहेकी छड़ीपर ही विशेष आस्था रखते हैं! वे अपने प्रतापके आडम्बरको वज्रगर्भ विद्युतके समान क्षण-क्षणमें हमारी आंखोंके आगे चमका जाया करते हैं। उससे हमारी आँखें चकचौंधा जाती हैं, हृदय भी काँपने लगता है किन्तु राजा प्रजाके बीच हृदयका बन्धन दृढ़ नहीं होता—बल्कि उल्टा पार्थक्य बढ़ जाता है।

भारतके भाग्यमें इस प्रकारकी अवस्था अवश्यंभावी है। क्योंकि, यहाँके राजसिंहासनपर जो लोग बैठते हैं उनकी अवधि तो अधिक दिनोंकी नहीं रहती; पर यहाँ उनकी राजक्षमता जितनी उत्कट रहती है, उतनी स्वयं भारत-सम्राटकी भी नहीं है। वास्तवमें देखा जाय तो इंग्लैण्डमें राज्य करनेका सुयोग किसीको भी नहीं मिलता, क्योंकि वहाँकी प्रजा स्वाधीन है। पर यहाँ ज्योंही किसी अँगरेजने पैर रक्खा कि उसे तत्काल ही मालूम हो जाता है कि भारतवर्ष अधीन राज्य है। ऐसी दशामें इस देशमें शासनके दम्भ और क्षमताके मदको संवरण करना क्षुद्र प्रकृतिके अफसरोंके लिये असंभव हो जाता है।

जिसके वंशमें पीढ़ियोंसे राज्य चला आया हो, ऐसे बुनियादी राजाको राजकीय नशा बेहोश नहीं कर सकता; परन्तु जो एकाएक राजा हो जाते हैं उनके लिये यह नशा एकदम विषका काम करता है। भारत-वर्षमें जो लोग शासन करने आते हैं, उनमेंसे अधिकांशको इस मदि-राका अभ्यास नहीं रहता। उन्हें स्वदेशकी अपेक्षा इस देशमें बहुत

अधिक परिवर्तन दिखलाई देता है। जो लोग वहाँ किसी भी समय विशेष कुछ नहीं थे, यहाँ वे बातकी बातमें हर्त्ता-कर्त्ता बने दिखलाई देते हैं। ऐसी अवस्थामें, नशाकी झोंकमें वे इस नूतनलब्ध प्रतापको सबसे अधिक प्रिय और श्रेय समझने लगते हैं।

प्रेमका पथ नम्रताका पथ है। किसी साधारणसे भी साधारण मनुष्यके हृदयमें प्रवेश करनेके लिये अपने मस्तकको उसके द्वारके मापके अनुसार झुकाना पड़ता है। पर जो व्यक्ति अपने प्रताप और प्रेष्टीजके सम्बन्धमें ताजा नवाबके समान सिरसे पैर तक सदा ही सावधान रहता है, उसके लिये यह नम्रता या सिर झुकाना दुःसाध्य कार्य है। अंगरेजोंका राज्य यदि शुरूसे ही आने-जानेका राज्य नहीं होता, यदि वे इस देशमें स्थायी होकर शासनकी उग्रताको थोड़ा बहुत सहन कर सकते, तो यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि वे हमारे साथ हृदय मिलानेकी चेष्टा करनेके लिये बाध्य होते। किन्तु वर्तमान व्यवस्था ऐसी है कि इंग्लैण्डके किसी अप्रसिद्ध प्रान्तसे, थोड़े समयके लिए इस देशमें आकर ये लोग इस बातको किसी तरह भी नहीं भूल सकते कि हम कर्त्ता-हर्त्ता हैं—स्वामी हैं। इस क्षुद्र दम्भको सर्वदा प्रकाशमान रखनेके लिये वे हम लोगोंको सभी बातोंमें निरंतर दूर दूर रखते हैं और केवल प्रबलताके द्वारा हमें अभिभूत कर रखनेकी चेष्टा करते हैं। इस बातको स्वीकार करनेमें वे कुण्ठित होते हैं कि हम लोगोंकी इच्छा अनिच्छा भी उनकी राजनीतिको स्पर्श कर सकती है। यहाँ तक कि उनके किसी कानूनसे या किसी विधानसे हम वेदना अनुभव करेंगे और उसे प्रकाश करेंगे, इसे भी वे गुस्ताखी समझते हैं।

किन्तु पति चाहे जितना कठोर क्यों न हो वह अपनी स्त्रीसे केवल बाध्यता ही नहीं चाहता, स्त्रीके हृदयके प्रति भी उसके भीतर ही

भीतर चाह रहती है। परन्तु वह हृदयपर अधिकार करनेका वास्तविक मार्ग ग्रहण नहीं कर सकता, इस कार्यमें उसका दुर्नम्य औद्धत्य बाधा डालता है। यदि उसे सन्देह हो जाय कि स्त्री मेरा आधिपत्य तो सहन करती है, परन्तु मुझपर प्यार नहीं करती, तो वह अपनी कठोरताकी मात्रा बढ़ाने लगता है। पर यह प्रीति उत्पन्न करनेका उत्तम उपाय नहीं है, इस बातको सभी जानते हैं, समझानेकी आवश्यकता नहीं।

इसी तरह भारतवर्षके अँगरेज राजा हमसे राजभक्ति अदा किये बिना नहीं रहना चाहते। किन्तु वे यह नहीं सोचते कि भक्तिका सम्बन्ध हृदयसे है और उस सम्बन्धमें दान-प्रतिदान दोनों हैं। यह कोई कल या मशीनका सम्बन्ध नहीं है। इस सम्बन्धको जोड़नेके लिए निकट आना पड़ता है, यह कोरी जबर्दस्तीका काम नहीं है। किन्तु वे चाहते यह हैं कि पास भी नहीं आना पड़े, हृदय भी नहीं देना पड़े और राजभक्ति अदा हो जाय। अन्तमें इस भक्तिके बारेमें जब उन्हें सन्देह हो जाता है तब वे गोरखोंकी फौज बुलाकर, बेत झाड़कर और जेलमें ठूंसकर भक्ति अदा करनेका प्रयत्न करते हैं।

अँगरेज राजा शासनकी कल चलाते चलाते कभी कभी एकाएक राजभक्तिके लिये कैसे व्यग्र हो उठते हैं, इस बातका एक नमूना लार्ड कर्जनके शासनमें पाया गया था।

यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो गई है कि स्वाभाविक आभिजात्यके अभावके कारण लार्ड कर्जन नशेमें उन्मत्त हो गए थे। इस तख्तको वे किसी तरह भी छोड़नेके लिये राजी नहीं थे। इस राजकीय आडम्बरसे जुदा होने पर उनका अन्तरात्मा एक दुर्दशाग्रस्त मतवालेके समान आज जिस अवस्थामें है, उसे यदि हम यथार्थभावसे अनुभव

करते तो शायद हमें भी उनपर दया आ जाती। हमारे खयालमें इस प्रकारकी शासन-लोलुपता भारतवर्षके और किसी भी शासन-कर्त्ताने इस तरहसे प्रकाशित नहीं की थी। इन लाट साहबने भारतके पुराने बादशाहोंके समान दरबार करना स्थिर किया और अहंकार प्रकट करनेके लिए उस दरबारका स्थान दिल्ली नियत किया।

किन्तु पूर्व देशोंके सभी राजा इस बातको जानते हैं कि दरबार अहंकार प्रकाश करनेके लिये नहीं किया जाता; यह राजाके साथ प्रजाके आनन्द-सम्मिलनका उत्सव है। इसमें केवल राजोचित ऐश्वर्यके द्वारा प्रजाको चकित स्तंभित नहीं किया जाता, किन्तु राजोचित औदार्यसे उसे निकट बुलाया जाता है। दरबार क्षमा करनेका, दान करनेका और राज-शासनको सुन्दरतासे सजानेका शुभ अवसर होता है।

किन्तु पश्चिमके इस ताजा नवाबने प्राच्य इतिहासको सम्मुख रख-कर और वदान्यता या उदारताको सौदागरी कृपणता द्वारा खर्व करके केवल प्रतापको ही अतिशय उग्र करके प्रकाशित किया। वास्तवमें देखा जाय तो इससे अँगरेजोंकी राजश्रीने हम लोगोंके निकट गौरव नहीं पाया। इससे दरबारका उद्देश्य बिलकुल व्यर्थ हो गया। इस दरबारके दुःसह दर्पसे प्राच्य हृदय पीड़ित ही हुआ, आकर्षित तो जरा भी नहीं हुआ। उसका अपरिमित अपव्यय यदि कुछ फल छोड़ गया है, तो वह अपमानकी स्मृति है। लोहेकी छड़ीसे सोनेकी छड़ीका काम निकालनेकी चेष्टा केवल निष्फल ही नहीं होती है, उसका फल उल्टा भी होता है।

अबकी बार राजपुत्रका भारतमें आगमन हुआ। राजनीतिकी दृष्टिसे यह परामर्श बहुत अच्छा हुआ था। क्योंकि, साधारणतः राजवंशीय पुरुषोंके प्रति भारतवर्षीय हृदय विशेषरूपसे अभिमुख रहता है। यह

भारतका बहुत पुराना प्रकृतिगत अभ्यास है और इसीसे दिल्ली दरबारमें ड्यूक आफ कनाटके होते हुए कर्जनका तख्तपर बैठना भारतवासी मात्रके हृदयमें खटका है। प्रजाको विश्वास है कि कर्जनने अपने दंभको प्रकाशित करनेके लिये ही इच्छापूर्वक दरबारमें ड्यूक आफ कनाटके उपस्थित रहनेका प्रयत्न किया था। हम लोग विलायती कायदे नहीं जानते, और फिर जब 'दरबार' चीज ही खासकर प्राच्य देशोंकी है, तब इसके उपलक्ष्यमें राजवंशका प्रकाश्य अपमान हमारी समझमें कमसे कम पालिसी-संगत तो नहीं कहा जा सकता।

जान पड़ता है कि ऐसा परामर्श दिया गया होगा कि कुछ भी हो पर भारतवर्षकी राजभक्तिको गति देनेके लिये एक बार राजकुमारको बुलाकर समस्त देशको इनका साक्षात् करा देना चाहिए। पर भारतवर्षके अँगरेजोंने हृदयका कारबार कभी किया ही नहीं। वे इस देशको अपना हृदय देते भी नहीं और इस देशका हृदय चाहते भी नहीं; इस देशका हृदय कहाँ पर है, इसकी भी वे खबर नहीं रखते। राजकुमारके भारतवर्षमें आगमनको जितना स्वल्पफलप्रद ये कर सकते थे उतना इन्होंने किया। आज राजकुमार भारतवर्षसे विदा होकर जहाजपर सवार हो रहे हैं और हमें जान पड़ रहा है कि एक स्वप्न था जो टूट गया; एक कहानी थी जिसकी इति हो गई। कुछ भी नहीं हुआ—मनमें रखने योग्य कुछ नहीं मिला; जो जैसा था वह वैसा ही रह गया।

यह सर्वथा सत्य है कि भारतवर्षकी राजभक्ति प्रकृतिगत है—उसके स्वभावमें समाई हुई है। हिन्दू भारतवर्षकी राजभक्तिमें एक विशेषता है। हिन्दू लोग राजाको देवतुल्य और राजभक्तिको धर्मस्वरूप मानते हैं। पाश्चात्य लोग उनकी इस विशेषताका तत्त्व समझनेमें

असमर्थ हैं । वे सोचते हैं कि शक्तिके सामने इस प्रकार सिर झुकाना हिन्दुओंकी स्वाभाविक दीनताका लक्षण है ।

संसारके अधिकांश सम्बन्धोंको दैवसम्बन्ध न मानना हिंदुओंके लिये असंभव है । हिंदुओंके विचारसे प्रायः कोई भी सम्बन्ध आकस्मिक नहीं है । क्यों कि वे जानते हैं कि प्रकाश कितने ही विचित्र और विभिन्न क्यों न हों, उनको उत्पन्न करनेवाली मूलशक्ति एक ही है । भारतवर्षमें यह एक दार्शनिक सिद्धान्त मात्र नहीं है; यह धर्म्म है —पुस्तकमें लिखने या कालेजोंमें पढ़ानेका नहीं, बल्कि ज्ञानके साथ हृदयमें उपलब्ध या साक्षात् और जीवनके दैनिक व्यवहारोंमें प्रतिबिम्बित करनेका है । हम माता-पिताको देवता कहते हैं, स्वामीको देवता कहते हैं, सती स्त्रीको लक्ष्मी कहते हैं । गुरुजनोंकी पूजा करके हम धर्मको तृप्त करते हैं । कारण यह है कि जिस जिस सम्बन्धसे हम मंगल लाभ करते हैं उन सभी सम्बन्धोंमें हम आदि मंगल शक्तिको स्वीकार करना चाहते हैं । मंगलमयको मंगलदानके उक्त सम्पूर्ण निमित्तोंसे अलगकर और सुदूर स्वर्गमें स्थापित कर उनकी पूजा करना भारतवर्षका धर्म नहीं है । जिस समय हम माता-पिताको देवता कहते हैं उस समय हमारे मनमें यह मिथ्या भावना नहीं होती कि वे अखिल जगत्के ईश्वर और अलौकिक शक्तिसम्पन्न हैं । वे मनुष्य हैं, इस बातको हम निश्चयपूर्वक जानते हैं; पर इस बातको भी उतने ही निश्चयके साथ जानते हैं कि माता और पिताके रूपोंसे वे हमारा जो उपकार कर रहे हैं वह उपकार—वह मातृत्व और पितृत्व सृष्टिके मातापिताका ही प्रकाश है । इन्द्र, चन्द्र, अग्नि, वायु आदिको जो वेदोंमें देवता स्वीकार किया गया है उसका भी यही कारण है । शक्तिके प्रकाशमें शक्तिमान्की सत्ता अनुभव किए बिना भारतवर्षको कभी सन्तोष नहीं हुआ । यही कारण

है कि विश्वसंसारमें भिन्न भिन्न निमित्तोंमें और भिन्न भिन्न आकारोंमें भक्तिविनम्र भारतवर्षकी पूजा आयोजित हुई है। हमारे विश्वासमें संसार सदा ही दैवशक्ति द्वारा जीवित है।

यह कहना सर्वथा असत्य है कि हमारी दीनता ही हमसे प्रबलताकी पूजा कराती है। सभी जानते हैं कि भारतवर्ष गायकी भी पूजा करता है। गायका पशु होना उसे मालूम न हो, यह बात नहीं है। मनुष्य प्रबल है, गाय दुर्बल। परन्तु भारतवर्षके मनुष्य गायसे अनेक प्रकारके लाभ उठाते हैं। एक उद्धत समाज कह सकता है कि मनुष्य अपने बाहुबलकी बदौलत पशुसे लाभ उठाता है। परन्तु भारतवर्षमें ऐसी अविनीतता नहीं है। सम्पूर्ण मंगलोंके मूलमें ईश्वरानुग्रहको प्रणाम करके और सम्पूर्ण प्राणियोंके साथ आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करके ही वह सुखी होता है। कारीगर अपने औजारको प्रणाम करता है, योद्धा अपनी तलवारको प्रणाम करता है, गवैया अपनी वीणाको प्रणाम करता है। वे यंत्रको यंत्र न जानकर कुछ और जानते हों, यह बात नहीं है। परन्तु वे यह भी जानते हैं कि यंत्र निमित्त मात्र है—वह हमें जो आनन्द देता है, हमारा जो उपकार करता है वह लोहे या काठका दान नहीं है; क्यों कि आत्माको किसी आत्मशून्य पदार्थमें कोई पा ही नहीं सकता। इसलिये वे अपनी पूजा, अपनी कृतज्ञता इन यंत्रोंहीके द्वारा विश्वयंत्रके यंत्रीकी सेवामें अर्पित करते हैं।

भारतवर्ष यदि राजशासनके कार्य्यको पुरुष रूपसे नहीं, बल्कि निर्जीव यंत्र रूपसे अनुभव करता रहे तो उसके लिये इससे बढ़कर कष्टकी बात दूसरी नहीं हो सकती। जड़ पदार्थोंके अन्दर भी जिसको आत्माके सम्पर्कका पता लगाकर ही सन्तोष होता है वह राज्यतंत्र

हम सबको दिखाया गया था कि हम भी राजावाले हैं—हमारे भी राजा हैं । पर मरीचिकासे कहीं सच्ची प्यास जाती है ?

सच तो यह है कि हम राजशक्तिको नहीं, राजहृदयको प्रत्यक्ष अनुभव करना और प्रत्यक्ष राजाको अपना हृदय अर्पित करना चाहते हैं । प्रभुगण ! आप यह बात कभी मत सोचिए कि धन और प्राणोंका रक्षित रहना ही प्रजाकी चरम चरितार्थता है। इसीसे आप कहते हैं कि ये शान्तिमें तो शराबोर हो रहे हैं, अब इन्हें और क्या चाहिए ? आप समझें कि जब हृदयके द्वारा मनुष्यके हृदयपर अधिकार कर लिया जाता है तब वह मनुष्य खुशी खुशी अपने धन और प्राणको निछावर कर देता है । भारतवर्षका इतिहास इसका प्रमाण है । मनुष्य केवल शान्ति ही नहीं बल्कि तृप्ति भी चाहता है । दैव हमारे कितना ही प्रतिकूल क्यों न हो, हम भी मनुष्य हैं। हम लोगोंकी भूख मिटानेके लिये सच्चे अन्नकी ही आवश्यकता होगी—हमारा हृदय फुलर, प्यूनिटिव पुलीस और जोर-जुल्मोंके द्वारा वश नहीं किया जा सकता।

देव हो या मानव, लाट हो या जैक, जहाँ केवल प्रतापका प्रकाश है, केवल बलका बाहुल्य है, वहाँ डरकर सिर झुकानेके समान और कोई आत्मावमान, अन्तर्यामी ईश्वरका अपमान, नहीं हो सकता । भारतवर्ष, तुम वहाँ अपने चिर दिनके अर्जित और सञ्चित ब्रह्मज्ञानकी सहायतासे इन सारी लांछनाओंके सामने अपना मस्तक अविचलित रखना, इन बड़े बड़े नामवाले असत्योंको सर्वान्तःकरणसे अस्वीकार करना; जिसमें ये विभीषिकाओंका रूप धारण करके तुम्हारी अन्तरात्माको तनिक भी संकुचित न कर सकें । तुम्हारी आत्माकी दिव्यता, उज्ज्वलता और परमशक्तिमत्ताके आगे ये सारे तर्जन-गर्जन, यह सारा उच्च पदका घमंड, यह सारा शासन-शोषणका आयोजन, आडम्बर, तुच्छ बाललीला मात्र हैं; ये तुम्हें पीड़ा भले ही दे लें,

तुम्हें छोटा कदापि नहीं कर सकते। जहाँ प्रेमका सम्बन्ध है वहाँ ही नत होनेमें गौरव है; जहाँ यह सम्बन्ध न हो वहाँ चाहे कैसी ही घटना क्यों न हो जाय, तुम अपने अन्तःकरणको मुक्त रखना, सरल रखना, दीनताको पास न फटकने देना, भिक्षुकभावको दूर भगा देना, और अपने आपमें पूर्ण आस्था रखना। क्योंकि निश्चय ही संसारको तुम्हारी अत्यन्त आवश्यकता है—तुम्हारे बिना उसका काम चल ही नहीं सकता। यही कारण है कि इतनी यातना-यंत्रणा सहकर भी तुम मरे नहीं, जीते हो। यह बात कदापि नहीं है कि दूसरोंकी बाहरी चाल ढालका अनुकरण करते हुए एक ऐतिहासिक प्रहसनका प्लाट तैयार करने मात्रके लिये तुम इतने दिनोंसे जीवित हो। तुम जो होगे, जो करोगे, दूसरे देशोंके इतिहासमें उसका दृष्टान्त नहीं है,—इसलिये उनके लिये वह अनूठी बात होगी। अपने निजके स्थानपर तुम विश्वब्रह्मांण्डमें सभीसे बड़े हो। हे हमारे स्वदेश! महापर्वतमालाके पादमूलमें महा समुद्रोंसे घिरा तुम्हारा आसन तुम्हारी प्रतिक्षा कर रहा है। इस आसनके सामने विधाताके आह्वानसे आकृष्ट होकर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध कितने ही दिनोंसे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। जिस समय तुम अपने इस आसनको फिर एक बार ग्रहण करोगे, हम निश्चयपूर्वक जानते हैं कि उस समय तुम्हारे मंत्रसे, ज्ञान, कर्म और धर्म्मके सेकड़ों विरोध क्षण मात्रमें मिट जायँगे और निष्ठुर, विश्वद्वेषी, आधुनिक पालिटिक्स (राजनीति) कालभुजंगका दर्प तुम्हारे चरणोंमें चूर्ण हो जायगा। तुम चञ्चल न होना, लुब्ध न होना, "आत्मानं विद्धि"—अपने आपको पहचानना और—"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत, क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति"—उठो, जागो, जो श्रेष्ठ है उसको पाकर प्रबुद्ध होओ; कवि कहते हैं कि सच्चा मार्ग शानपर चढ़ाए हुए छुरेकी धारके समान दुर्गम और दुरतिक्रम्य होता है।

करनेकी चेष्टा करनेसे और भी एक प्रकारकी हीनता आ जाती है। अतएव दुर्बल पक्ष यदि ऐसे कार्य्यके विषयमें अधिक उत्साह न प्रकट करे तो ही अच्छा है।

इसके सिवा जिन्होंने अपराध किया है, जो पकड़े गए हैं, निष्ठुर राजदण्डकी तलवार जिनके सिरपर झूल रही है और कुछ विचार न करके केवल इस विचारसे कि उन्होंने संकट उपस्थित किया था—उपद्रव किया था—उनके प्रति तीखे भाव प्रकट करना कायरपन है। उनके विचारका भार ऐसे हाथोंमें है, जिन्हें अनुग्रह या ममता किञ्चिन्मात्र भी दण्ड-लाघवकी ओर नहीं बढ़ा सकतीं। इसपर यदि हम भी आगे बढ़कर उनके दण्डदानमें योग देना चाहें तो हम अपने भीरु-स्वभावकी निर्दयता ही प्रकट करेंगे। उनके कार्य्यको हम चाहे जितना दूषित क्यों न मानें, उसपर मत प्रकट करनेके आवेशमें हमारा आत्मसम्मानकी मर्य्यादाका उल्लंघन करना किसी प्रकार उचित नहीं है। जिस समय समस्त देशको अपने सिरके ऊपरवाले आकाशमें रुद्रके समान रोषवाली एक वज्रहस्ता मूर्त्ति क्रोधसे काँपती हुई देख पड़ रही है, उस समय हमारी दायित्वहीन चुलबुलाहट अनावश्यक ही नहीं बल्कि अनुचित भी है।

कोई अपने आपको कितना ही दूरदर्शी क्यों न मानता हो, हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि देशके अधिकांश लोगोंने नहीं सोचा था कि बात यहाँतक बढ़ जायगी। बुद्धि हम सभीमें न्यूनाधिक परिमाणमें है, पर चोरके चले जानेपर इस बुद्धिका जितना विकास होता है, चोरके रहते हुए उसके उतने विकासकी आशा नहीं की जा सकती।

निस्सन्देह घटना हो जानेके पीछे यह कहना सहज होता है कि ऐसा होनेकी सम्भावना थी, इसीसे ऐसा हुआ। ऐसे सुयोगमें हममेंसे

जो स्वभावसे जरा अधिक उत्तेजनाशील होते हैं उनकी भर्त्सना करना भी हमारे लिये सहज हो जाता है । हम कहते हैं, तुम एकदम इतना छलाँग मारनेका हौसला न करते तो अच्छा होता ।

हम हिन्दू विशेषत: बंगाली, बातोंमें चाहे जितना जोश प्रकट कर डालें, पर किसी साहसपूर्ण कार्यके करनेमें कदापि प्रवृत्त नहीं हो सकते—यह लज्जाजनक बात देशविदेश सभी जगह प्रसिद्ध हो चुकी है । इसके फलस्वरूप बाबूमण्डलीको खास तौरपर अँगरेजोंके निकट नित्य दुस्सह शब्दोंकी ठोकरें खानी पड़ती हैं । सब प्रकारके उत्तेजनापूर्ण वाक्य कमसे कम बंगालमें तो सब प्रकारसे निरापद हैं—उन्हें कहीं बाधा या विरोधका सामना नहीं करना पड़ता, इस सम्बन्धमें हमारे शत्रु या मित्र किसीको किसी तरहका सन्देह नहीं है । यही कारण है कि अबतक बातचीतमें, भावभंगीमें हमें कुछ भी ज्यादती प्रकट करते देखकर कभी दूसरोंने और कभी स्वयं हमारे आत्मीयोंने बराबर नाराजगी या खफगी प्रकट की है और हमारे असंयमकी दिल्लगी उड़ाना भी बुरा नहीं समझा है । वस्तुत: किसी बँगला अखबारमें या किसी बंगाली वक्ताके मुखसे जब हम अपरिमित उच्चाकांक्षामय वाक्योंको निकलते हुए देखते हैं तब खासकर अपनी जातिके लिये यह सोचकर हमें पानी पानी हो जाना पड़ता है कि जो दु:साहसपूर्ण कामोंको करनेके लिये विख्यात नहीं हैं, उनके वाक्योंकी तीक्ष्णता उनकी दीनताका केवल मोर्चा साफ करती है—उसे और भी प्रकाशित कर देती है । वास्तवमें बंगाली जाति बहुत दिनोंसे भीरुताकी बदनामीको सिर झुकाकर सहती चली आ रही है । इसीसे प्रस्तुत घटनाके सम्बन्धमें न्याय-अन्याय, इष्ट-अनिष्ट, सभी विचारोंको तिलाञ्जलि देकर इस अपमानमोचनके उपलक्ष्यमें बंगालीको आनन्द हुए बिना नहीं रह सकता ।

अतः यह बात सर्वथा सत्य है कि स्वदेश या विदेशके किसी ज्ञानी पुरुषने दावेके साथ यह भविष्यद्वाणी नहीं की थी कि बंगालके मनमें दबी हुई चिनगारी क्रमशः ऐसी प्रचण्ड अग्निके रूपमें प्रज्वलित होगी। ऐसी दशामें हमारे इस अकस्मात् बुद्धिविकासके कालमें जिनके विचारों और कार्य्योंको हम पसन्द न करते हों उनको असावधानताका दोषी ठहराते फिरना अच्छी बात नहीं है। मैं भी इस गड़बड़ीके समय किसी पक्षके विरुद्ध कोई बात नहीं कहना चाहता। पर किस प्रकार क्या हुआ और उसका क्या फलाफल होगा, इसका निरपेक्ष भावसे विवेचन करके हमें अपना मार्ग निश्चित करनाही होगा। ऐसी चेष्टा करते समय यदि हमारा मत किसी एक अथवा कतिपय सज्जनोंके मतसे भिन्न जान पड़े तो वे दया करके इस बातका विश्वास रक्खें कि हमारी बुद्धि कमजोर हो सकती है, हमारी दृष्टिमें दुर्बलता होना सम्भव है; परन्तु यह कदापि सम्भव नहीं है कि स्वदेशके हितके विषयमें उदासीनता या हितैषियोंके प्रति बुरे भाव होनेके कारण हम जान-बूझकर विचारनेमें भूल करें। अतएव हमारे विचारोंको आप भले ही स्वीकार न करें, पर हमारे मतोंके प्रति श्रद्धा और उनके सुन लेनेका धैर्य्य आप अवश्य रक्खें।

कुछ दिनोंसे बंगालमें जो कुछ हो रहा है, हममेंसे कौन कौन बंगाली उसके संघटनमें कितने कारणीभूत हैं, इसकी सूक्ष्म विवेचना न करके भी यह बात निश्चयके साथ कही जा सकती है कि तन, मन या वाणीमेंसे किसी एक न एकके द्वारा हममेंसे प्रत्येकने उसका पोषण किया है। अतएव जो चित्तदाह परिमित स्वभावमें ही बद्ध नहीं रहा है, प्रकृतिभेदके अनुसार जिसकी उत्तेजना हम सभीने थोड़ी बहुत अनुभूत और प्रकाशित की है, यदि उसीका कोई केन्द्रक्षिप्त

परिणाम इस प्रकारके गुप्त विप्लवका विलक्षण आयोजन हो, तो उसका उत्तरदायित्व और दुःख बंगाली मात्रको स्वीकृत करना पड़ेगा। जिस समय मेरे शरीरमें भस्माभूत ज्वर चढ़ा हो उस समय हाथकी हथेली केवल यह कहकर ही मृत्युके अवसरपर अपने आपको साधु और सिरको सारे अनर्थोंकी जड़ बतलाकर छुटकारा नहीं पा सकती कि हम तो सिरकी अपेक्षा अधिक ठंढे थे। हमने इस बातको अच्छी तरह नहीं सोचा कि हम क्या करेंगे और क्या करना चाहते हैं। हम यही जानते हैं कि हमारे कलेजेमें आग लगी हुई थी। उस आगके गिर पड़नेसे स्वभावतः गीली लकड़ी धुआँ देने लगी, सूखी लकड़ी जलने लगी और घरमें जहाँ कहीं मिट्टीका तेल था वह अपनेको न सँभाल सकनेके कारण टीनका शासन हटाकर भयंकर रूपसे भड़क उठा।

जो हो, कार्य्य और कारणका पारस्परिक योग अथवा व्याप्ति चाहे जिस प्रकार हुई हो, पर जब आग भड़क उठी तब सब तर्क छोड़ कर उस आगको बुझाना पड़ेगा। इस सम्बन्धमें मतभेदसे काम न निकलेगा।

मुख्य बात यह है कि कारण अभी देशसे दूर नहीं हुआ। लोगोंका चित्त उत्तेजित हो गया है और यह उत्तेजना इतनी अधिक बढ़ गई है कि पहले जो सांघातिक व्यापार हमारे देशके लिये बिलकुल ही असम्भव मालूम होते थे वे ही अब सम्भव हो गए हैं। विरोध-बुद्धि इतनी गम्भीर और बहुत दूर तक व्याप्त हो गई है कि हमारे शासक बलपूर्वक इसे केवल यहाँ वहाँसे उखाड़नेकी चेष्टा करके ही कभी उसका अन्त न कर सकेंगे, बल्कि इसे और भी प्रबल कर डालेंगे।

यदि हम इस बातकी आलोचना करने लगें कि वर्त्तमान संकटके समय हमारे शासकोंका क्या कर्त्तव्य है, तो हमें इस बातकी आशा

जिस दिन आर्य जाति गिरिगुफाके बन्धनसे मुक्ति पानेवाली स्रोतस्विनीकी तरह अकस्मात् बाहर होकर विश्वपथपर आ पड़ी थी और उसकी एक शाखाने वेदमंत्रोंका उच्चारण करते हुए भारतवर्षके बनोंमें यज्ञाग्नि प्रज्वलित की थी, उस दिन भारतके आर्य्य-अनार्य्य-सम्मिलन क्षेत्रमें जो विपुल इतिहासकी उपक्रमणिकाका गायन आरम्भ हुआ था आज क्या वह समाप्त होनेके पहले ही शान्त हो गया है? बच्चोंके मिट्टीके घरकी तरह क्या विधाताने अनादरके साथ आज उसे हटात् गिरा डाला है? उसके पश्चात् इसी भारतवर्षसे बौद्ध धर्मके मिलन-मंत्रने, करुणाजलसे भरे हुए गम्भीर मेघके समान गरजते हुए, एशियाके पूर्व सागरतीरकी निवासिनी समस्त मंगोलियन जातिको जाग्रत कर दिया और ब्रह्मदेशसे लेकर बहुत दूर जपानतकके भिन्न भिन्न भाषाभाषी अनात्मीयोंको भी धर्मसम्बन्धमें बाँधकर भारतके साथ एकात्म बना दिया। भारतके क्षेत्रमें उस महत् शक्तिका अभ्युदय क्या केवल भारतके भाग्यमें ही, भारतवर्षके लिये ही परिणामहीन निष्फलताके रूपमें पर्यवसित हुआ है? इसके अनन्तर एशियाके पश्चिमीय प्रान्तसे दैवबलकी प्रेरणासे एक और मानव महाशक्ति प्रसुप्तिसे जाग्रत होकर और ऐक्यका सन्देश लेकर प्रबल वेगसे पृथिवीपर फैलती हुई बाहर निकली। इस महाशक्तिको विधाताने भारतमें केवल बुला ही नहीं लिया, चिरकालके लिये उसे आश्रय भी दिया। हमारे इतिहासमें यह घटना भी क्या कोई आकस्मिक उत्पात मात्र है? क्या इसमें किसी नित्य सत्यका प्रभाव दिखलाई नहीं पड़ता? इसके पश्चात् युरोपके महाक्षेत्रसे मानवशक्ति जीवनशक्तिकी प्रबलता, विज्ञानके कौतूहल और पुण्यसंग्रहकी आकांक्षासे जब विश्वाभिमुखी होकर बाहर निकली, उस समय उसकी भी एक बड़ी धारा विधाताके आह्वानपर यहाँ आई और अब अपने आघात द्वारा

हमें जगानेका प्रयत्न कर रही है। इस भारतवर्षमें बौद्ध धर्मकी बाढ़ हट जाने पर जब खण्ड खण्ड देशके खण्ड खण्ड धर्म्म-सम्प्रदायोंने विरोध और विच्छिन्नताके काँटे सब ओर बिछा रक्खे थे उस समय शंकराचार्य्यने उस सारी खण्डता और क्षुद्रताको एक मात्र अखण्ड बृहत्त्वमें ऐक्यबद्ध करनेकी चेष्टा कर भारतहीकी प्रतिभाका परिचय दिया था। अन्तिम कालमें दार्शनिक ज्ञानप्रधान साधना जब भारतमें ज्ञानी अज्ञानी; अधिकारी अनधिकारीका भेदभाव उत्पन्न करने लगी तब चैतन्य, नानक, दादू, कबीर आदिने भारतके भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें जाति और शास्त्रके अनैक्यको भक्तिके परम ऐक्यमें एक करनेवाले अमृतकी वर्षा की थी। केवल प्रादेशिक धर्म्मोंके विभिन्नतारूपी घावको प्रेमके मलहमसे भर देनेहीका उन्होंने उद्योग नहीं किया बल्कि, हिन्दू और मुसलमान प्रकृतिके बीच धर्मका पुल बाँधनेका काम भी वे करते थे। इस समय भी भारत निश्चेष्ट नहीं हो गया है—राममोहनराय, स्वामी दयानन्द, केशवचन्द्रसेन, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, शिवनारायणस्वामी आदिने भी अनैक्यके बीचमें ऐक्यको, क्षुद्रताके बीचमें महत्त्वको प्रतिष्ठित करनेके लिये अपने जीवनकी साधनाओंको भारतके चरणोंमें भेंट कर दिया है। अतीत कालसे आजतक भारतवर्षके एक एक अध्याय इतिहासके विच्छिन्न विक्षिप्त प्रलाप मात्र नहीं हैं, ये परस्पर बँधे हुए हैं, इनमेंसे एक भी स्वप्नकी तरह अन्तर्द्धान नहीं हुए, ये सभी विद्यमान हैं। चाहे सन्धिसे हो या संग्रामसे, घातप्रतिघात द्वारा ये विधाताके अभिप्रायकी अपूर्व रूपसे रचना कर रहे हैं—उसकी पूर्त्तिके साधन बना रहे हैं। पृथ्वीपर विद्यमान और किसी देशमें इतनी बड़ी रचनाका आयोजन नहीं हुआ—इतनी जातियाँ, इतने धर्म, इतनी शक्तियाँ किसी भी तीर्थस्थलमें एकत्र नहीं हुई। अत्यन्त

विभिन्नता और वैचित्र्यको बहुत बड़े समन्वयके द्वारा बाँधकर विरोध-में ही मिलनके आदर्शको विजय दिलानेका इतना सुस्पष्ट आदेश जगत-में और कहीं ध्वनित नहीं हुआ। अन्य सब देशोंके लोग राज्यविस्तार करें, पण्यविस्तार करें, प्रतापविस्तार करें और भारतवर्षके मनुष्य दुस्सह तपस्या द्वारा ज्ञान, प्रेम और कर्मसे समस्त अनैक्य और सम्पूर्ण विरोधमें उसी एक ब्रह्मको स्वीकारकर मानवकर्मशालाकी कठोर संकीर्णतामें मुक्तिकी उदार, निर्मल ज्योति फैलाते रहें—बस भारतके इतिहासमें आरम्भसे ही हम लोगोंके लिये यही अनुशासन मिल रहा है। गोरे और काले, मुसलमान और ईसाई, पूर्व और पश्चिम कोई हमारे विरुद्ध नहीं हैं—भारतके पुण्यक्षेत्रमें ही सम्पूर्ण विरोध एक होनेके लिये सैकड़ों शताब्दियोंतक अति कठोर साधना करेंगे। इसीलिए अति प्राचीन कालमें यहाँके तपोवनोंमें उपनिषदोंने एकका तत्त्व इस प्रकार आश्चर्यजनक सरल ज्ञानके साथ समझाया था कि इतिहास अनेक रीतियोंसे उसकी व्याख्या करते करते थक गया और आज भी उसका अन्त नहीं मिला।

इसीसे हम अनुरोध करते हैं कि अन्य देशोंके मनुष्यत्वके आंशिक विकाशके दृष्टान्तोंको सामने रखकर भारतवर्षके इतिहासको संकीर्ण करके मत देखिए—इसमें जो बहुतसे तात्कालिक विरोध दिखाई पड़ रहे हैं उन्हें देख हताश होकर किसी क्षुद्र चेष्टामें अन्ध भावसे अपने आपको मत लगाइए। ऐसी चेष्टामें किसी प्रकार कृतकार्यता न होगी, इसको निश्चित जानिए। विधाताकी इच्छाके साथ अपनी इच्छा भी सम्मिलित कर देना ही सफलताका एक मात्र उपाय है। यदि उसके साथ विद्रोह किया जायगा तो क्षणिक कार्य्यसिद्धि हमें भुलावा देकर भयंकर विफलताकी खाड़ीमें डुबा मारेगी।

जिस भारतवर्षने सम्पूर्ण मानव महाशक्तियोंके द्वारा स्वयं क्रमशः ऐसा विराट् रूप धारण किया है, समस्त आघात, अपमान, समस्त वेदनाएँ जिस भारतवर्षको इस परम प्रकाशकी ओर अग्रसर कर रही हैं उस महा भारतवर्षकी सेवा बुद्धि और अन्तःकरणके योगसे हममेंसे कौन करेगा? एकरस और अविचलित भक्तिके साथ सम्पूर्ण क्षोभ, अधैर्य्य और अहंकारको इस महासाधनामें विलीनकर भारतविधाताके पदतलमें पूजाके अर्घ्यकी भाँति अपने निर्मल जीवनको कौन निवेदन करेगा? भारतके महा जातीय उद्बोधनके वे हमारे पुरोहित आज कहाँ हैं? वे चाहे जहाँ हों, इस बातको आप ध्रुव सत्य समझिए कि वे चञ्चल नहीं हैं, उन्मत्त नहीं हैं, वे कर्मनिर्देशशून्य महत्त्वाकाङ्क्षाके वाक्यों द्वारा देशके व्यक्तियोंके मनोवेगको उत्तरोत्तर संक्रामक वायु-रोगमें परिणत नहीं करा रहे हैं। निश्चय जानिए कि उनमें बुद्धि, हृदय और कर्मनिष्ठाका अत्यन्त असामान्य समावेश हुआ है, उनमें गम्भीर शान्ति और धैर्य्य तथा इच्छाशक्तिका अपराजित वेग और अध्यवसाय इन दोनोंका महत्त्वपूर्ण सामञ्जस्य है।

परन्तु जब हम देखते हैं कि किसी विशेष घटना द्वारा उत्पन्न उत्तेजनाकी ताड़नासे, किसी सामयिक विरोधसे क्षुब्ध होकर देशके अनेक व्यक्ति क्षणभर भी विचार न कर देशहितके लिये सरपट दौड़ने लगते हैं तब हमें कुछ भी सन्देह नहीं रहता कि केवल मनोवेगका राहखर्च लेकर वे दुर्गम मार्ग तै करनेके लिये निकल पड़े हैं। वे देशके सुदूर और सुविस्तीर्ण मंगलको शान्त भाव और यथार्थ रीतिसे सोच ही नहीं सकते। उपस्थित कष्ट ही उन्हें इतना असह्य मालूम होता है, उसीके प्रतिकारकी चिन्ता उनके चित्तपर इस तरह चढ़ जाती है कि उनकी जब्तकी दीवार बिलकुल ही टूट जाती है और अपने तात्का-

सुलभता एक ओर तो कुछ दाम लेकर राजी हो जाती है, पर दूसरी ओर इतना कसकर वसूल कर लेती है कि आरम्भसे ही उसको बहुमूल्य मान लेनेसे वह अपेक्षाकृत कम मूल्यमें पाई जा सकती है ।

हमारे देशमें भी जब देशकी हितसाधनबुद्धि नामका दुर्लभ महा-मूल्य पदार्थ एक आकस्मिक उत्तेजनाकी कृपासे आबालवृद्धवनितामें इतनी प्रचुरतासे दिखाई पड़ने लगा जिसका हम कभी अनुमान भी न कर सकते थे, तब हमारी सरीखी दरिद्र जातिके आनन्दका पारावार नहीं रहा । उस संमय हमने यह सोचना भी नहीं चाहा कि उत्तम पदार्थकी इतनी सुलभता अस्वाभाविक है । इस व्यापक पदा-र्थको कार्य्यनियमोंसे बाँधकर संयत संहत न करनेसे इसकी वास्त-विक उपयोगिता ही नहीं रह जाती । यदि सभी ऐरे गैरे पागलोंकी तरह यह कहने लगें कि हम युद्ध करनेके लिये तैयार हैं, और हम उन्हें अच्छे सैनिक समझकर इस बातपर आनन्द-मग्न होने लगें कि उनकी सहायतासे हम सहजमें सब काम कर लेंगे, तो प्रत्यक्ष युद्धके समय हम अपना सारा धन और प्राण देकर भी इस सस्तेपनके परन्तु सांघातिक उत्तरदायित्वसे बच न सकेंगे ।

असल बात यह है कि मतवाला जिस प्रकार केवल यही चाहता है कि मेरे और मेरे साथियोंके नशेका रंग गहरा ही होता जाय, उसी प्रकार जिस समय हमने उत्तेजनाकी मादकताका अनुभव किया, उस समय उसके बढ़ाते ही जानेकी इच्छा हममें अनिवार्य हो उठी और अपनी इस इच्छाको नशेकी ताड़ना न मानकर हम कहने लगे कि— "शुरूमें भावकी उत्तेजना ही अधिक आवश्यक वस्तु है, यथारीति परिपक्व होकर वह अपने आप ही कार्य्यकी ओर अग्रसर होगी । अतः जो लोग रातदिन काम काम चिल्लाकर अपने गले सुखा रहे हैं वे छोटी

समझके लोग हैं—उनकी दृष्टि व्यापक नहीं है, वे भावुक नहीं हैं; हम केवल भावसे देशको मतवाला बना देंगे; समस्त देशको एकत्रकर भावका भैरवी चक्र बैठावेंगे जिसमें इस मंत्रका जाप किया जायगा—

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत् पतति भूतले।
उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥

चेष्टाकी आवश्यकता नहीं, कर्मकी आवश्यकता नहीं, गढ़ने-जोड़ने-की आवश्यकता नहीं, केवल भावोच्छ्वास ही साधना है, मत्तता ही मुक्ति है।

हमने बहुतोंको आह्वान किया, बहुतोंको इकट्ठा किया, जनताका विस्तार देखकर हम आनन्दित हुए; पर ऐसे कार्य्यक्षेत्रमें हमनें उन्हें नहीं पहुँचाया जिसमें उद्बोधित शक्तिको सब लोग सार्थक कर सकते। उत्साह मात्र देने लगे, काम नहीं दिया। इससे बढ़कर मनुष्यके मनको अस्वस्थ करनेवाला काम दूसरा नहीं हो सकता। हम सोचते हैं कि उत्साह मनुष्यको निर्भीक बनाता है और निर्भीक हो जानेपर वह कर्म-मार्गकी बाधा-विपत्तियोंसे नहीं डरता। परन्तु बाधाओंके सिरपर पैर रखकर आगे बढ़नेकी उत्तेजना ही तो कर्मसाधनका सर्व प्रधान अङ्ग नहीं है—स्थिरबुद्धिसे युक्त होकर विचार करनेकी शक्ति, संयत होकर निर्माण करनेकी शक्ति, उससे बड़ी है। यही कारण है कि मतवाला मनुष्य हत्या कर सकता है पर युद्ध नहीं कर सकता। यह बात नहीं है कि युद्धमें मत्तताकी कुछ भी मात्रा न रहती हो, पर अप्रमत्तता ही प्रभु होकर उसका सञ्चालन करती है। इसी स्थिरबुद्धि दूरदर्शी कर्मोत्साही प्रभुको ही वर्त्तमान उत्तेजनाकालमें देश ढूँढ़ रहा है—पुकार रहा है, पर अभागे देशके दुर्भाग्यके कारण उसका पता नहीं मिलता। हम दौड़-कर आनेवाले लोग केवल शराबके बरतनमें शराब ही भरते हैं, इंजिनमें

भापका बल ही बढ़ाते रहते हैं। जब पूछा जाता है कि रास्ता साफ करने और पटरियाँ बिछानेका काम कौन करेगा, तब हमारा जवाब होता है—इन फुटकर कामोंको लेकर दिमाग खराब करना फजूल है—समय आनेपर सब कुछ अपने आप ही हो जायगा। मजदूरका काम मजदूर ही करेगा; हम जब ड्राइवर हैं तब इंजिनमें स्टीम ही बढ़ाते रहना हमारा कर्त्तव्य है।

अब तक जो लोग सहिष्णुता रख सके हैं, संभव है कि वे हमसे पूछ बैठें कि—"तब क्या बंगालके सर्वसाधारण लोगोंमें जो उत्तेजनाका उद्रेक हुआ है, उससे किसी भी अच्छे फलकी आशा नहीं की जा सकती?"

नहीं, हम ऐसा कभी नहीं समझते। अचेतन शक्तिको सचेष्ट या सचेतन करनेके लिये इस उत्तेजनाकी आवश्यकता थी। पर जगा कर उठा देनेके अनन्तर और क्या कर्त्तव्य है? कार्यमें नियुक्त करना या शराबमें मस्त करके मतवाला कर देना? शराबकी जितनी मात्रा क्षीण प्राणको कार्यक्षम बनाती है उससे अधिक मात्रा फिर उसकी कार्यक्षमता नष्ट कर देती है। सत्य कर्ममें जिस धैर्य और अध्यवसायका प्रयोजन होता है मतवालेकी शक्ति और रुचि उससे विमुख हो जाती है। धीरे धीरे उत्तेजना ही उसका लक्ष्य हो जाती है और वह विवश होकर कार्यके नामपर ऐसे अकार्योंकी सृष्टि करने लगता है जो उसकी मत्तताहीकी अनुकूलता करते हैं। इस सारे उत्पात कर्मको वस्तुतः वह मादकता बढ़ानेका निमित्त समझकर ही करता है और इनके द्वारा उत्तेजनाकी मात्राको घटने नहीं देता। मनोवेग जब कार्य्योंमें मार्गसे बाहर निकलनेका रास्ता नहीं पाता, और भीतर ही भीतर सञ्चित और वर्द्धित होता रहता है तब वह विषका काम करता है,

उसका अप्रयोजनीय व्यापार हमारे स्नायुमण्डलको विकृत करके कर्म-सभाको नृत्यसभामें बदल देता है।

नींदसे जागने और अपनी सचल शक्तिकी वास्तविकताका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये उत्तेजनाके जिस एक आघातकी आवश्यकता होती है उसीका हमें प्रयोजन था। हमने विश्वास कर लिया था कि अँगरेज जाति हमारे जन्मान्तरके पुण्य और जन्मकालके शुभग्रहकी भाँति हमारे पैवन्द लगे टुकड़ोंमें हमारे समस्त मंगलोंको बाँध देगी। विधातानिर्दिष्ट इस अयत्नप्राप्त सौभाग्यकी हम कभी वन्दना करते और कभी उससे कलह करके कालयापन करते थे। इस प्रकार जब मध्याह्नकालमें सारा संसार जीवनयुद्धमें निरत होता था तब हमारी सुखनिद्रा और भी गाढ़ी होती थी।

ऐसे ही समय किसी अज्ञात दिशासे एक ठोकर लगी। नींद भी टूट गई और फिर आँखें मूँदकर स्वप्न देखनेकी इच्छा भी नहीं रह गई; पर आश्चर्य है कि हमारी उस स्वप्नावस्थासे जागरणका एक विषयमें मेल रह ही गया।

तब हम निश्चिन्त हो गये थे—हमें भरोसा हो गया था कि प्रयत्न न करके भी हम प्रयत्नका फल प्राप्त कर लेंगे। अब सोचते हैं कि फल प्राप्तिके लिये प्रयत्नकी जितनी मात्रा आवश्यक है उसको बहुत कुछ घटाकर भी हम वही फल प्राप्त कर सकते हैं। जब स्वप्न देखते थे तब भी असम्भवका आलिंगन किए हुए थे; जब जागे तब भी असम्भवको अपने बाहुजालके बाहर न कर सके। शक्तिकी उत्तेजना हममें बहुत अधिक हो जानेके कारण अत्यावश्यक विलम्ब हमें अनावश्यक जान पड़ने लगा। बाहर वही पुराना दैन्य रह गया है, अन्दर

ऐसी नजीर पेशकर हम अपने आपको भुला सकते हैं, पर विधाताकी आखोंमें धूल नहीं झोंक सकते। जातिभिन्नत्वके रहते हुए भी स्वराज्य चलाया जा सकता है या नहीं, वास्तवमें यही मुख्य प्रश्न नहीं है। विभिन्नता तो किसी न किसी रूपमें सभी जगह है, जिस परिवारमें दस आदमी हैं वहाँ दस विभिन्नताएँ हैं। मुख्य प्रश्न यह है कि विभिन्नताके भीतर एकताका तत्त्व काम कर रहा है या नहीं। सैकड़ों जातियोंके होते हुए भी यदि स्विटजरलैण्ड एक हो सका तो मानना पड़ेगा कि एकत्वने वहाँ भिन्नत्वपर विजय प्राप्त कर ली है। वहाँके समाजमें भिन्नत्वके रहते हुए प्रबल ऐक्य धर्म भी है। हमारे देशमें विभिन्नता तो वैसी ही है; पर ऐक्य धर्मके अभावसे वह विशिष्टतामें परिवर्त्तित हो गई है और भाषा, जाति, धर्म, समाज और लोकाचारमें नाना रूप और आकारोंमें प्रकट होकर इस बृहत् देशके उसने छोटे बड़े हजारों टुकड़े कर रक्खे हैं।

अतएव उक्त दृष्टान्त देखकर निश्चिन्त हो बैठनेका तो कोई कारण नहीं देख पड़ता। आँख मूँदकर यह मंत्र रटनेसे धर्म या न्यायके देवताके यहाँ हमारी सुनवाई न होगी कि हमारा और सब कुछ ठीक हो गया है, बस अब किसी प्रकार अँगरेजोंसे गला छुड़ाते ही बंगाली, पंजाबी, मराठे, मदरासी, हिन्दू, मुसलमान सब एक मन, एक प्राण, एक स्वार्थ हो स्वाधीन हो जायँगे।

वास्तवमें आज भारतवर्षमें जितनी एकता दिखाई पड़ती है और जिसे देखकर हम सिद्धिलाभको सामने खड़ा समझ रहे हैं वह यांत्रिक है, जैविक नहीं। भारतकी विभिन्न जातियोंमें यह एकता जीवनधर्मकी प्रेरणासे नहीं प्रकट हुई है, किन्तु एक ही विदेशी शासनरूपी रस्सीने हमें बाहरसे बाँधकर एकत्र कर दिया है।

नीचे तलीमें पड़ा रहता है वही सच्चा तत्त्व है। एक अँगरेज समालोचकने रामायणकी अपेक्षा इलियडको श्रेष्ठ काव्य सिद्ध करते हुए लिखा है—"इलियड काव्य अधिकतर human है, अर्थात् उसमें मानव-चरित्रका वास्तवांश अधिक मात्रामें ग्रहण किया गया है। क्योंकि उसमेंका एकिलिस निहत शत्रुके शवको रथके पहियोंमें बाँधकर घसीटता फिरा है और रामायणके रामने पराजित शत्रुको क्षमा कर दिया है।" यदि क्षमाकी अपेक्षा प्रतिहिंसाके भावको मानव-चरित्रमें अधिक वास्तविक, अधिक स्वाभाविक माननेका अर्थ यह हो कि मनुष्यमें क्षमाकी अपेक्षा प्रतिहिंसाका भाव ही अधिक होता है, तब तो इन समालोचक साहबका निष्कर्ष अभ्रान्त ही मानना पड़ेगा। पर मानव-समाज इस बातको कभी न मानेगा कि स्थूल परिमाण ही सचाईके नापनेका एक मात्र साधन है; घर भरे अन्धकारकी अपेक्षा अंगुलभर स्थान भी न घेरनेवाली दीपशिखाको वह अधिक मानता है।

जो हो, यह निर्विवाद है कि एक बार आँखसे देखकर ही इसकी मीमांसा नहीं की जा सकती कि मानव इतिहासके हजारों लाखों उपकरणोंमेंसे कौन प्रधान है कौन अप्रधान, कौन उपस्थित कालमें परम सत्य है कौन नहीं। यह बात माननी ही पड़ेगी कि उत्तेजनाके समय उत्तेजना ही सबकी अपेक्षा बड़ा सत्य जान पड़ती है। क्रोधके समय ऐसी कोई बात सत्यमूलक नहीं जान पड़ती जो क्रोधकी निवृत्ति करनेवाली हो। उस समय मनुष्य स्वभावतः ही कह बैठता है—"अपने धार्मिक उपदेश रहने दो। हमें उनकी जरूरत नहीं।" इसका कारण यह नहीं है कि धर्मोपदेश उसके प्रयोजनकी सिद्धिमें उपयोगी नहीं है और रोष उसमें भारी सहायक है; बात यह है कि उस समय वह वास्तविक उपयोगिताकी ओर दृष्टिपात करना ही नहीं चाहता, प्रवृत्ति-